मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'कही ईसुरी फाग' और स्त्री जीवन का यथार्थ

एम. फिल. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक

डॉ. ओमप्रकाश सिंह

शोधकर्त्ता

सुषमा कुमारी

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

2006

मम्मी–पापा को

जिन्होंने उंगलियाँ पकड़कर चलना सिखाया...

"मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए"

—दुष्यंत कुमार

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre for Indian Languages
School of Language, Literature & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated : 28/ 07/ 2006

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitled "MAITRAYEE PUSHPA KA UPANYAS 'KAHI ISURI FAAG' AUR STRI JEEVAN KA YATHARTH" (Reality of women's life and Maitrayee Pushpa's Novel 'KAHI ISURI FAAG') by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University / Institution.

Sushma Kumari

SUSHMA KUMARI
(Research Scholar)

DR. OM PRAKASH SINGH
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

M. S. Hus

PROF. MOHD SHAHID HUSAIN
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, TEL : (91-011) 26717676, 26717557 Extn : 4217, (D) 26704217 Fax: (91-011) 26717603, 26717586

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

अपनी ओर से... I–IV

अध्याय–एक 1–30

मैत्रेयी पुष्पा का रचना संसार और नारी जीवन

1. मैत्रेयी का रचना संसार
2. मैत्रेयी के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी जीवन
3. मैत्रेयी के उपन्यासों में नारी संघर्ष का रूप

अध्याय–दो 31–57

'कही ईसुरी फाग' और नारी जीवन के विविध पक्ष

1. देह धरे को दंड
2. मुक्ति की राह

अध्याय–तीन 58–75

'कही ईसुरी फाग' : कलिकाल में कथा का नया रूप

1. कथ्यगत वैशिष्ट्य
2. शिल्पगत वैशिष्ट्य

उपसंहार : कुछ कही, कुछ अनकही 76–79

संदर्भ–ग्रंथ सूची I–IX

अपनी ओर से...

मैत्रेयी पुष्पा का नाम तो मैंने बहुत सुना था पर पहले कभी उनकी रचनाओं को पढ़ने का मौका नहीं मिला। एम. फिल. में आने के बाद पुस्तक समीक्षा के लिए उनकी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' को पढ़ने का मौका मिला। उनकी रचनाओं से यह मेरा पहला परिचय था। इस आत्मकथा को पढ़ने के बाद मुझे ऐसा लगा कि यह केवल मैत्रेयी की आत्मकथा नहीं है, बल्कि यह समस्त नारी जाति की कथा है। उनका अनुभव, उन सभी स्त्रियों का स्वर बन गया है, जो इस समाज में अपने ढंग से जीवन जीना चाहती हैं और आगे बढ़ना चाहती हैं। इनकी रचनाओं को पढ़ने के बाद मैंने निश्चय किया कि मैं स्त्री विषय पर अपना शोध कार्य करूँगी। उनकी रचनाओं से मुझे ऐसा लगा कि यह बहुत कुछ कहना और करना चाहती हैं। वैसे तो कई लेखिकाएँ हैं जो नारी केंद्रित रचनाएँ कर रही हैं, परन्तु मैत्रेयी की रचनाओं में जो नारी है, वह किसी और में नहीं।

मैत्रेयी का उपन्यास 'कही ईसुरी फाग' को चुनने का कारण यह था कि यह उपन्यास उनके अपने अन्य उपन्यासों से भिन्न और विशिष्ट है, क्योंकि इसमें नारी जीवन के संघर्ष को केवल घर की दहलीज लाँघकर करते हुए ही नहीं दिखाया गया है, बल्कि उसका यह संघर्ष देश की आजादी से जुड़ गया है। रज्जो उस सामंती समाज की स्त्री है जहाँ स्त्रियों को तमाम बंधनों के घेरे में रहना पड़ता है। रज्जो का देश की आजादी से जुड़ना आज की समस्त नारियों के लिए प्रेरणास्रोत है। इतना ही नहीं इसमें ऋतु का चरित्र आज की आधुनिक नारी के संघर्ष को दर्शाता है, जो छात्र जीवन में इस पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा प्रताड़ित की जाती है। इसीलिए इसमें ऋतु और रज्जो का चरित्र काफी सुदृढ़ बन पाया है। लोक–कथा पर आधारित यह उपन्यास ग्रामीण जीवन में स्त्री की स्थिति का मार्मिक विश्लेषण तो करता ही है, साथ ही साथ अकादमिक शोध संस्थानों के पारंपरिक ढाँचे पर सवाल उठाते हुए एक नई

इतिहास दृष्टि भी प्रदान करता है। इस लघु शोध प्रबंध में कुल तीन अध्याय हैं। 1. मैत्रयी पुष्पा का रचना संसार और नारी जीवन, 2. 'कही ईसुरी फाग' और नारी जीवन के विविध पक्ष' 3. 'कही ईसुरी फाग' : कलिकाल में कथा का नया रूप।

पहले अध्याय में मैत्रेयी पुष्पा के लेखन कर्म पर समग्रता से विचार किया गया है। इसमें उनकी रचनाओं के परिचय के साथ–साथ उनके सरोकारों और उनकी मान्यताओं का विवेचन करने की कोशिश की गई है, जो उनके रचनात्मक लेखन में अंतर्निहित है। इस अध्याय में मैत्रेयी पुष्पा के रचना कर्म का हिन्दी की अन्य स्त्री रचनाकारों की सापेक्षता में तुलनात्मक मूल्याँकन भी किया गया है।

दूसरा अध्याय विशेष रूप से मेरे शोध प्रबंध के आधार ग्रंथ 'कही ईसुरी फाग' पर ही केंद्रित है। लोक–कथा के माध्यम से स्त्री मुक्ति के विकल्प का प्रस्तुतीकरण इस उपन्यास को मैत्रेयी के अन्य उपन्यासों से विशिष्ट बनाता है। इसमें 'कही ईसुरी फाग' के अपने वैशिष्ट्य को ध्यान में रखते हुए उन समस्याओं पर विचार किया गया है, जो इस उपन्यास में ली गई हैं। ग्रामीण जीवन के यथार्थ और उसमें स्त्रियों की स्थिति, उसके कारणों और परिणामों का विश्लेषण करते हुए इस अध्याय में स्त्री जीवन के प्रसंग में 'कही ईसुरी फाग' में व्यक्त और अंतर्निहित नवीन अंतर्दृष्टियों और स्त्री जीवन की संभावनाओं पर विचार किया गया है।

'कही ईसुरी फाग' में मैत्रेयी पुष्पा ने इतिहास और गल्प, लोक–कथा और साहित्य का अद्‌भुत संयोजन किया है। इसमें शिल्प की नवीनता तो है ही, लेकिन यह केवल शिल्प के प्रयोग से जुड़ा हुआ मुद्‌दा नहीं है। कथा–साहित्य के पारंपरिक ढाँचे को तोड़कर उन्होंने स्त्री–समस्या से जुड़ी हुई कई अंतर्दृष्टियाँ अर्जित की हैं। इसके जरिए वे अतीत और वर्तमान, ग्रामीण और शिक्षित, शहरी समाज और संस्थाओं में अंतर्निहित शोषण की निरंतरता की पहचान करती हैं। शोध प्रबंध के तीसरे अध्याय में शिल्प और कथ्य से जुड़े हुए इन सारे पहलुओं का विश्लेषण किया गया है और साथ ही कथा साहित्य और स्त्री–विमर्श के प्रसंग में इस उपन्यास की उपलब्धियों का मूल्याँकन भी किया गया है।

मैं अपने शोध–निर्देशक डॉ. ओमप्रकाश सिंह का तहेदिल से शुक्रिया अदा करती हूँ, जिन्होंने अपनी अस्वस्थता के बावजूद भी मुझे अपना बहुमूल्य समय दिया। उन्होंने मेरे शोध कार्य के एक–एक शब्द पर ध्यान दिया और जहाँ कहीं भी कमी नजर आई, मुझे मेरी गलती बताकर सुधार करवाया। जब भी मैं उनसे मिली, एक पिता की तरह व्यवहार किया और गुरु की तरह मेरी कमजोरियों से मुझे अवगत कराया। मेरे शोध कार्य को पूरा करने में उन्होंने अपना पूरा सहयोग प्रदान किया है।

हर इंसान की पहली पाठशाला उसका परिवार होता है। मैंने भी पहला पाठ अपने परिवार के बीच ही रहकर सीखा। अपनी पाठशाला के हेडमास्टर (मम्मी–पापा) के आशीर्वाद से ही आज इस मुकाम तक पहुँच पाई हूँ। बड़े भैया ने हमेशा आत्मनिर्भर बनने के लिए मुझे 'अपना काम स्वयं करो' का पाठ पढ़ाया। 'दूसरों पर निर्भर मत रहो'– भैया का यह कथन हमेशा मुझे याद रहेगा। बड़ी भाभी (शिरीषा) से पूर्व परिचित होने के कारण हमेशा बड़ी दीदी जैसा प्यार और स्नेह मिला। बड़े भैया और भाभी की गाइडेंस की वजह से मैं आज शोध कार्य भी पूरा कर पाई हूँ। छोटे भैया और रिंकू से दोस्ताना संबंध होने के कारण कभी बड़े होने का अहसास ही नहीं हुआ। उनके साथ रहते हुए हमेशा खुश रहती। खास बात यह है कि मैं जब भी उन दोनों के साथ रहती, ऊल–जुलूल बातें करतीं, बिल्कुल बचपन में चली जाती। वही उधम मचाना, ऊट–पटाँग हरकत करना और जब बड़ों से डाँट पड़ती तब भी हम पर कोई असर नहीं होता। कुछ देर शांत रहने के बाद फिर वही बदमाशी...।

रुचि दीदी से हमेशा स्नेह और प्यार मिला। मेरे इस लघु शोध–प्रबंध में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्हें मैं हमेशा दीदी के रूप में याद रखूंगी। जगदीश भैया को याद करना चाहूंगी जिन्होंने समय–समय पर इस कार्य को पूरा करने के लिए मुझे आशीर्वाद दिया।

सुम्मी की लड़ाई और उसका प्यार मैं नहीं भूल सकती। जब भी मुझे जरूरत हुई, उसने मेरा साथ दिया। वह जे.एन.यू. में नहीं है, लेकिन आज भी उसकी कमी महसूस होती है। उसके साथ बिताए हुए लम्हें हमेशा मेरे अंदर उसी रूप में मौजूद रहेंगे।

जानू को मैंने कभी दूर महसूस नहीं किया। दूर रहकर भी वह हमेशा अपने पास होने का अहसास मुझे कराती रही। हमारा प्यार जरा दूसरे किस्म का है, जहाँ बात की शुरुआत ही गालियों से होती है।

अंत समय में कवितेंद्र सर, सागर और सांवरिया के सहयोग ने काफी संबल प्रदान किया। मैं उन दोस्तों को भी धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने इस कार्य में सहयोग प्रदान किया है। साथ ही उन्हें भी जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से थोड़ी सी परेशानी भी पैदा की।

अनिल जी, जिन्होंने अपना कीमती समय निकालकर इस लघु शोध–प्रबंध की टाइपिंग की। अगर अनिल जी नहीं होते तो इस कार्य को पूरा करने में काफी दिक्कत होती। इनके सहयोग और साथ के लिए मैं उन्हें हमेशा याद रखूंगी।

अब अंत में मैं जय के बारे में कहना चाहूँगी, जिसने हर कदम पर मेरा साथ दिया। कह सकती हूँ वो मेरे सुख–दुःख के साथी हैं। व्यक्तिगत समस्या से लेकर अकादमिक समस्याओं तक का समाधान इन्होंने किया। एक अच्छे दोस्त होने का हर फर्ज इन्होंने बखूबी निभाया। हर तरह से इनका साथ और सहयोग मिला और आगे भी मैं इसी 'साथ' की इच्छा रखती हूँ।

इति ...

सुषमा कुमारी

पहला–अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा का रचना संसार और नारी जीवन

1. मैत्रेयी का रचना संसार
2. मैत्रेयी के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी जीवन
3. मैत्रेयी के उपन्यासों में नारी संघर्ष का रूप

किसी भी रचनाकार का रचना संसार हवा में सृजित नहीं होता। समाज और परिवेश की वास्तविकताओं को नजरअंदाज करके सार्थक रचनाकर्म नहीं किया जा सकता। जाहिर है कि सार्थक रचना कर्म के लिए समाज और परिवेश की सम्यक जानकारी रचनाकार के लिए आवश्यक है। वर्तमान समय में लेखिकाएँ समाज और परिवेश से टकराते हुए आत्मसंघर्ष के माध्यम से अपने अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करने में संलग्न हैं। कहना न होगा कि मैत्रेयी पुष्पा ऐसी ही एक लेखिका हैं। व्यापक सामाजिक सरोकारों से टकराते हुए मैत्रेयी ने अपने अनुभवों को इस प्रकार शब्दबद्ध किया है कि उनका नाम कथा साहित्य की दुनिया में सुपरिचित हो गया है।

मैत्रेयी के जीवन का प्रारंभ विषम परिस्थितियों से हुआ है। छोटी उम्र से ही मैत्रेयी मानसिक एवं शारीरिक व्यभिचार को झेलती रही हैं। ''मैं साथी की इच्छा करती–करती अनैतिक की कालिख अपने मुँह पर मलती रही। कितना समझाया था खुद को और पूछा, लड़कों के नजदीक जाए बिना रह नहीं सकती तू लड़की? नहीं रह सकती थी तो उनसे क्यों नफरत हुई जो मौके–बेमौके जोर–जबर्दस्ती तेरा संग–साथ चाहते थे?''[1] एदल्ला, जगदीश, बाज बहादुर, शिवदयाल, नन्द किशोर, राघव, हेड क्लर्क सारस्वत, ड्राइवर, प्रिंसिपल आदि पुरुषों द्वारा मैत्रेयी पर मर्दाना प्रहार हुए। पुरुष पिशाचों द्वारा छली गई मैत्रेयी का जीवन कितना कष्टदायक रहा होगा, यह अकल्पनीय नहीं है। इन अमानवीय, पाशविक स्थितियों के बीच सहपाठियों एवं गाँव वालों के दुर्व्यवहार से जूझती मैत्रेयी के लिए विवाह ही एक ऐसा माध्यम बचा था, जिससे उन्हें सुरक्षा एवं प्यार मिल सकता था। पति के घर ही मैत्रेयी दुनिया की कुत्सित निगाहों से बच सकती थीं।

मैत्रेयी ने विवाह को अपनी मुक्ति के रूप में चुना था, पर उन्हें यह मालूम न था कि विवाह भी सुखद नीड़ नहीं है। कभी शक्ल–सूरत की सामान्यता तो कभी स्वच्छन्द स्वभाव मैत्रेयी के दोषों में गिना जाने लगा। हद तो तब हुई जब पहली संतान के रूप में पुत्री पैदा हुई। पुत्री का पैदा होना ही पहला कलंक था। उसने पहला प्रकाश देखा ही था कि उसे अपमान और उपेक्षा का जहर दिया जाने लगा।

बेटी की माँ होने के कारण मैत्रेयी के सारे शुभ लक्षण कुलक्षण में गिनाए जाने लगे। ऐसा लगा जैसे बेटी को जन्म देकर मैत्रेयी ने बहुत बड़ा पाप किया हो। यहाँ एक बात गौरतलब है कि मैत्रेयी ने विवाह को अपनी मुक्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया था। इसके मूल में था– उसका बीहड़ जीवनानुभव। इन अनुभवों ने उन्हें यह भलीभाँति समझा दिया था कि यह समाज स्त्री को महज एक देह बनाकर रख देता है।

मैत्रेयी पुष्पा को मायके और ससुराल से जिस प्रकार की उपेक्षा मिली थी, वैसी ही उपेक्षा पति से भी मिली। पति और ससुराल से उपेक्षित मैत्रेयी के लिए ससुराल छोड़ने के अलावा और कोई दूसरा विकल्प न था। घर–परिवार के माहौल से दूर वे अपनी तीन बेटियों को साथ लेकर समाज के साथ संघर्ष करती रहीं, पर हार न मानी। मार्ग की हर बाधा को दरकिनार करते हुए वे 'जहाँ चाह, वहा राह' की नीति पर निरंतर आगे बढ़ती रहीं। संघर्ष के इसी दौर में धीरे–धीरे उनका लेखन की तरफ झुकाव हुआ। छिटपुट रूप में तो वे स्कूली जीवन से ही लिखती रहीं हैं, परन्तु व्यवस्थित लेखन उन्होंने शादी के बाद लगभग चालीस वर्ष की उम्र से आरम्भ किया।

हर भुक्तभोगी के पास लेखन क्षमता नहीं होती और हर लेखक के पास पीड़ा से स्पंदित हृदय नहीं होता। रचनाकार के पास यदि भोगी हृदय भी हो, तो यह नयन को वाणी का वरदान मिल जाने जैसा सुखद संयोग ही कहा जाएगा। मैत्रेयी पुष्पा के पास ये दोनों चीजें हैं। इसीलिए अनुभूति की दृष्टि से उनकी रचनाएँ बहुत सफल कही जाती हैं।

स्त्री होने की जिस पीड़ा को मैत्रेयी ने सहा है, वही पीड़ा उनकी रचनाओं में उभरी है। परिवार और समाज के प्रति उनके मन में जो आक्रोश एकत्र हुआ था, जो अनकहा उनके भीतर दबा हुआ था, वह अभिव्यक्ति का माध्यम पाते ही उमड़कर बाहर आ गया। वे इस बात को स्वीकार करती हैं कि "संघर्षमय स्कूली जीवन एवं बेटियों की माँ होने के कारण समाज में मिली उपेक्षा से उपजा वर्षों का आक्रोश जो मेरे भीतर जमा था, वह लेखन के जरिए बाहर आने लगा।"[2]

समकालीन अधिकाँश लेखिकाओं का कथा संसार स्त्री–पुरुष की प्रेमग्रंथि के इर्द–गिर्द ही घूमता है। ये लेखिकाएँ शहरी उच्च–मध्यवर्गीय परिवार की आधुनिक समस्याओं के विवेचन में लगी रहती हैं। इसके समानान्तर मैत्रेयी का रचना संसार व्यापक सामाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के बीच से जीवन के अनेक पक्षों पर टिप्पणी करता है। इसके साथ ही एक खास बात और है मैत्रेयी में। जहाँ अन्य लेखिकाएँ 'महानगरीय जीवन', 'प्रेम की विडम्बना' और नैतिक मूल्यों पर पुनर्विचार को अपनी रचनाओं का विषय चुनती हैं, वहीं मैत्रेयी कथानक का चुनाव ही ग्रामीण परिवेश से करती हैं। बुन्देलखण्ड और आसपास के ग्रामीण अंचल को उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से 'ऊर्जावान' और जीवन्त बनाया है। आम ग्रामीण जनता के सुख–दुःख, आशा–निराशा, जय–पराजय एवं जीवन संघर्षों से जुड़े जिस कथा संसार में वह पाठकों को ले जाती हैं, वह विश्वसनीय एवं मार्मिक है।

मैत्रेयी की रचनाओं में आए ग्रामीण जीवन के चित्र बरबस ही हमें फणीश्वरनाथ रेणु की याद दिला देते हैं। मैत्रेयी की रचनाओं में यह जीवंतता यूं ही नहीं आई है। उनके जीवन का काफी समय बुन्देलखण्ड अंचल के गाँवों में बीता है। ऐसे में उनका उस जगह से लगाव–जुड़ाव होना स्वाभाविक है। इसी कारण मैत्रेयी ने जितने भी उपन्यास लिखें हैं, लगभग सब में बुन्देलखण्ड के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित करने में वे सफल रही हैं। ग्रामीण जीवन को काफी करीब से देखने के कारण ही उनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन के केवल रूमानी और भावुक चित्र ही नहीं, अच्छाइयाँ और बुराइयाँ भी यथार्थ रूप में सामने आई हैं।

मैत्रेयी जिस स्त्री संसार को अपने लेखन में केंद्रीयता प्रदान करती हैं, वह उनके व्यक्तिगत अनुभव जगत की उपज है। जिस प्रकार मैत्रेयी ने इस समाज को चुनौती दी थी, उसी प्रकार उनकी रचनाएँ भी इस पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था– जिसमें पुरुष औरतों पर अपना प्रभुत्व जमाते हैं और उनका दमन और शोषण करते हैं– को ललकारती है। मैत्रेयी के लेखन के केंद्र में स्त्री जीवन है, इसीलिए उनके लेखन में स्त्री जीवन की ठोस वास्तविकताओं के अनुभव से निर्मित स्त्री चेतना का

ऐसा रूप है जिसमें कही पराधीनता का बोध है, तो कहीं विद्रोह का भाव, कहीं अस्वीकार का स्वर है, तो कहीं चुनौती की भंगिमा।

मैत्रेयी का रचना–संसार

इस परम्पराबद्ध, रुढ़िगत समाज में सत्ता, शास्त्र, लोकमत और पुरुष की अधीनता में साँस लेती स्त्री को अपने व्यक्तित्व तथा अस्तित्व की स्वतंत्रता के लिए जैसा कठिन संघर्ष करना पड़ता है, उसे पुरुष दृष्टि से नहीं पहचाना जा सकता। हालाँकि स्त्री की दयनीय दशा और उसके जीवन संघर्ष का चित्रण अनेक लेखकों ने किया है, पर अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता का विवाद अक्सर उठता रहा है। यह और बात है कि अनेक स्थलों पर उनकी अभिव्यक्ति प्रभावशाली है, पर उनकी रचनादृष्टि में यथार्थ की वह आग और बेचैनी नहीं है, जो एक भोक्ता में होती है। यह बात शरतचंद, प्रेमचंद, जैनेंद्र आदि के साहित्य के बारे में अक्सर उठती रहती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि इन रचनाकारों ने पूरी सहानुभूति के साथ भारतीय स्त्री के जीवन की विडम्बनाओं और यातनाओं का चित्रण किया है पर 'राख ही जानती है जलने की पीड़ा'। स्त्री द्वारा भोगे और जिये गए जीवन की अनुभूति को प्रामाणिक ढंग से कोई स्त्री ही चित्रित कर सकती है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा ने लिखा है कि "पुरुषों के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परन्तु नारी के लिए अनुभव। अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके।"[2]

मैत्रेयी अपनी रचनाओं में नारी जीवन के जिन अंतरंग पहलुओं को प्रामाणिक ढंग से उभार सकनें में सफल हुई हैं कोई लेखक नहीं कर सकता। मैत्रेयी की रचना के मूल में है उनका संघर्षपूर्ण जीवनानुभव। मैत्रेयी ने जीवन के जिन ऊबड़–खाबड़ रास्तों पर चलने का साहस किया, इसी साहस ने इन्हें सम्बल प्रदान किया और लेखनी में धार पैदा की। अपनी मेहनत और बेटियों के सहयोग से मैत्रेयी ने लेखन कार्य की शुरुआत की और निरंतर आगे बढ़ती गईं। शुरुआत में ही इन्होंने

देखते–देखते 'सहचर', 'बेटी', 'बहेलिये' आदि कई कहानियाँ लिख डाली। इसी लगन को देखते हुए हिमांशु जोशी ने इन्हें उपन्यास लिखने की सलाह दी। फिर तो पूछिए मत, एक के बाद एक रचनाओं– कविता, कहानी, उपन्यास– के लेखन का सिलसिला चल पड़ा। 'चिन्हार', 'ललमनियां' (कहानी संग्रह) 'लकीरें' (कविता संग्रह), 'स्मृतिदंश', 'इदन्नमम', 'अल्मा कबूतरी' से होती हुई अब वे 'कही ईसुरी फाग' तक आ पहुँची हैं। उन्होंने जो देखा, जो अनुभव किया, जो भोगा उसी सच को अपनी रचनाओं में चित्रित किया।

'चिन्हार' मैत्रेयी का पहला कहानी संग्रह है। पहला कहानी संग्रह होने के बावजूद इस संग्रह की कहानियों में परिपक्वता है। ये कहानियाँ रोमानी और भावुक नहीं हैं। इनमें यथार्थ का चित्रण है। "इनमें केवल गाँव, गाँव की अबूझ पगडंडियाँ, कच्ची झोपड़ियाँ, खेत–खलिहान और इन खेत–खलिहानों में सारा संघर्षमय जीवन व्यतीत करने वाले अनगढ़ किसान ही नहीं, कहीं उनके भीतर का व्यापक संसार भी है। वे परस्पर घृणा हीं नहीं करते, कहीं एक स्नेह का असीम सागर भी उनके अंतः में हिलोरे लेता दिखाई देता है। जहाँ वे शोषण, दोहन एवं अमानवीय स्थितियों की पराकाष्ठा पर स्वतः पहुँचते दिखाई देते हैं, वहीं ठीक इनके विपरीत कहीं एक–दूसरे के लिए जीते और मरते हुए भी।"[3]

दूसरी बात इनकी कहानियाँ मात्र कहानी नहीं हैं। इन कहानियों में आज के बदलते समाज का प्रतिबिम्ब है। इनकी कहानियों में एक ओर आर्थिक प्रगति का चित्रण है, तो दूसरी ओर शोषण का सनातन रूप भी झलकता है। 'अपना–अपना आकाश' की अम्मा हो, चाहे 'चिन्हार' की सरजू या 'आक्षेप' की रमिया या फिर 'भँवर' की विरमा, सभी की अपनी–अपनी व्यथाएँ, सीमाएँ हैं। कैसे इनकी आस्थाएँ बिक रहीं हैं, कैसे इनके सपनों को कुचला जा रहा है, कैसे इनका भविष्य धुंधलाता जा रहा है, इन सबके साथ–साथ इनके दुःख–दर्द को मैत्रेयी ने बड़ी सहजता एवं स्वाभाविकता से चित्रित किया है। 'बहेलिये' कहानी की गिरजा की अनकही व्यथा, अंतहीन वेदना, घुटन भरी विवशता मात्र एक ग्रामीण गिरजा की व्यथा नहीं है, अनेक ऐसी गिरजाओं

की कहानी है जो सुनहरे सपने संजोते–संजोते अनेक दुःस्वप्नों के बीच जीने के लिए अभिशप्त हैं।

मैत्रेयी केवल सामंतवादी संस्कारों वाले समाज की क्रूरता या हृदयहीन समाज में नारी के साथ किए गए पशुवत व्यवहार का ही चित्रण नहीं करती; बल्कि वे एक ऐसी नारी का चित्रण करती हैं जो मात्र भोग्या या शोषित रूप में सब–कुछ सहने को तैयार नहीं। सहन की एक सीमा होती है। एक स्थिति के बाद कोमल वस्तु भी कठोर जान पड़ती है। नारी के ऐसे ही कठोर रूप का चित्रण मैत्रेयी करती हैं। 'केतकी' कहानी में केतकी के साहस की दाद देनी होगी। वह एक ऐसी नारी है जिसने 'पाप कोई करे और सजा कोई पाए' की नीति का भरी पंचायत में विरोध किया है। उसने शरीफों का लबादा पहने गंधर्वसिंह जैसे मानव रूपी भेड़िए को नंगा कर दिया, 'केतकी' के माध्यम से मैत्रेयी नारी के अंदर एक नई चेतना जागृत करना चाहती हैं।

'ललमनियाँ' कहानी संग्रह की 'फैसला', 'सिस्टर', 'किसकी हो बिन्नी', 'अब फूल नहीं खिलते' आदि कई कहानियाँ नारी जीवन की विषमताओं को दर्शाती हैं। 'फैसला' कहानी जहाँ स्त्री के दृढ़ साहस का बयान करती है, वहीं 'अब फूल नहीं खिलते' कहानी आज के बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों– जहाँ गुरु–शिष्य परम्परा कब की नष्ट हो चुकी है– के प्रोफेसरों के काले करतूतों का पोल खोलती है। जहाँ लड़की शिष्या रूप में नहीं बल्कि नारी देह के रूप में देखी जाती है। 'सिस्टर' कहानी एक अकेली औरत के जीवन के खालीपन को दर्शाती है। एक स्त्री थोड़ी सी सहानुभूति पाकर सामने वाले को अपना समझ बैठती है और बाद में छली जाती है, इसे मैत्रेयी ने इस कहानी में बड़ी संवेदनात्मक ढंग से चित्रित किया है।

मैत्रेयी की कहानियों की भाँति उनके उपन्यास भी नारी जीवन के यथार्थ को बयान करते हैं। मैत्रेयी के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी जीवन उनके स्वयं के जीवनानुभव के परिणाम हैं। 'इदन्नमम' की बऊ, प्रेम, मंदाकिनी या 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा, कदमबाई या फिर 'चाक' की सारंग, खेरापतिन आदि मैत्रेयी के मनगढंत पात्र नहीं हैं। ये सभी उनके आसपास की ही स्त्रियाँ हैं। ये किसी शहर की क्राँतिकारी स्त्रियाँ नहीं हैं, बल्कि ग्रामीण जीवन संग्राम में उसी तरह रची–बसीं हैं जैसे मैत्रेयी की

माँ कस्तूरी और स्वयं मैत्रेयी। असल में ये स्त्रियाँ एक ऐसे ग्रामीण समाज से हैं जहाँ उनको वस्तु समझा जाता है। ग्रामीण समाज में गाय, बैल, भैंस, अनाज जैसी चीजों के साथ लड़कियाँ भी बेची–खरीदी जाती हैं। मैत्रेयी की माँ कस्तूरी भी ऐसी ही एक खरीदी हुई औरत है। "ओ, आठ सौ की घोड़ी, तू मुँह नहीं दिखाती, तेरी यह मजाल! हम तो सोच रहे थे नई छोरी की तरह शरमा रही है, पर तू तो जो आजमा रही है! तेरे भइया ने खनखनाते चाँदी के कलदार बसूले हैं मुफत में नहीं आई सो नखरे पसार रही है।"[4]

मैत्रेयी नारी जीवन के यथार्थ को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त करती हैं। ऐसा समाज जहाँ बेटी का विवाह नहीं, सौदा किया जाता है, मैत्रेयी के उपन्यासों का कथ्य बनता है। मैत्रेयी चुप रहने वाली नहीं है और न ही उनके पात्र। इसीलिए तो 'बेतवा बहती रही', 'इदन्नमम', 'चाक', 'अल्मा–कबूतरी' आदि उपन्यासों में महिलाओं का संघर्ष जुझारू होकर परिस्थितियों से टकराता है। इस टकराव की गूँज हमारे कानों तक पहुँचती है और हमें अंतर्मुखी हो, सोचने के लिए मजबूर करती है। ऐसी स्थिति मैत्रेयी के लेखकीय व्यक्तित्व का सर्वाधिक सकारात्मक पहलू मानी जाएगी।

मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों में नारी की जिस छवि को प्रस्तुत किया है, वह नारियों में एक नई चेतना जागृत करती है। इस तरह की चेतना जागृत करने में उनकी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' और नारी विमर्श से संबंधित पुस्तक 'खुली खिड़कियाँ' विशेष रूप से विचारणीय हैं।

मैत्रेयी की पुस्तक 'खुली खिड़कियाँ' के नाम से ही लगता है कि इसमें जागरूकता से भरपूर बातें होंगी। आमतौर पर लड़कियों को अपने कमरे की खिड़की बंद रखने को कहा जाता है। उनके इर्द–गिर्द एक चहारदीवारी खींच दी जाती है। मैत्रेयी इसका विरोध करती हैं। वे खिड़कियों को खुला छोड़ देती हैं ताकि ताजी हवा आ सके। वे बाहर की दुनियाँ को देख सकें। इस पुस्तक द्वारा मैत्रेयी नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं। मैत्रेयी को उस पुरुष व्यवस्था से चिढ़ है जो स्त्री के चारों ओर बंधन डालती है, जहाँ उसका मानसिक और दैहिक शोषण होता है।

वे यह मानती हैं कि पितृसत्ता एक ऐसी शोषणकारी प्रक्रिया है, जिसमें स्त्री कब भौतिक गुलाम से मानसिक गुलाम में रूपांतरित हो जाती है, उसे पता ही नहीं चलता। ऐसे में वह अपने प्राण गँवाकर अपने सतीत्व की रक्षा करती है और अपने हाथों जीवन की समस्त संभावनाओं को अवरुद्ध कर देती है, पर प्रश्न करने का साहस नहीं करती। इस शोषणकारी व्यवस्था में यदि कोई स्त्री भूल से भी सतीत्व की जगह अस्तित्व की माँग करती है, या फिर अपनी सामाजिक राहें स्वयं चुनती या निर्धारित करके वस्तु से जीव (प्राणी) बनने की कोशिश करती है, तो यह पितृसत्तात्मक समाज उसे न जाने कितने सम्बोधन दे डालता है। उसे मनुष्य रूप में जीने नहीं देता।

मैत्रेयी अच्छी तरह जानती हैं कि औरत कहीं भी सुरक्षित नहीं है, चाहे वह राजनीति या मीडिया ही क्यों न हो! मीडिया को तो मैत्रेयी औरत के अस्तित्व पर मंडराने वाला खतरा कहती हैं। यह मीडिया भी रूढ़ परम्पराओं को ही परोसता रहा है। सच तो यह है कि टेलीविजन के चैनल ऐसे दृश्य धारावाहिक को दिखाकर एक तरह से स्त्री चेतना की प्रबल विरोधी ही सिद्ध हुए हैं। इन धारावाहिकों में "स्त्री के सिर पर सिंदूर के बोरे लदे नजर आए तो गले में सुहाग की साँकल बंधी रही।"[5] आखिर स्त्रियों को ही क्यों विवाहिता होने की निशानी या चिन्ह ढोने पड़ते हैं जबकि पुरुषों को नहीं। इसलिए मैत्रेयी इस पुस्तक में कई सवाल खड़ा करती हैं। उनका केंद्रीय सवाल ही नहीं उनकी मुख्य चिंता भी है– स्त्री होने के कारण स्त्री का जो दैहिक व मानसिक शोषण हो रहा है, उससे वह कैसे मुक्त हो?

मैत्रेयी यह मानती हैं कि भारत में सहिष्णु आधारों पर ही नहीं बल्कि उग्र ताकतों के इशारों पर धर्म नाचता है। इसी कारण इक्कीसवीं सदी में भी स्त्री दोयम दर्जा रखती है। नारी शूद्रों से भी निम्न स्तर का जीवन व्यतीत करती है, क्योंकि "शूद्र का धर्म उसके वर्ण, जाति व व्यवसाय के आधार पर तय होता है, परन्तु स्त्री (के धर्म) का आधार शुद्ध लैंगिक है।"[6] सच पूछा जाय तो यही उसके शोषण का सबसे बड़ा कारण भी है। वह एक ऐसी चल संपत्ति के रूप में देखी जाती है जो समाज व संस्कृति में सदैव विद्यमान रहती है। उसे एक ऐसी चल संपत्ति माना जाता

है जिस पर राह चलते कोई भी अपना हक जताने आ जाए। यानी औरत चाहे अंधी, बहरी, लंगड़ी–लूली हो, शोषण में कोई फर्क नहीं पड़ता। वस्तुतः वह देह होने के कारण ही शोषित होती है। ऐसे शोषण का मैत्रेयी स्वयं भुक्तभोगी रहीं हैं। इसीलिए वे अन्य स्त्रियों से भी रूढ़ियों व परम्पराओं को ध्वस्त करके अपनी शक्ति पहचानने की अपील करती हैं। जबरन ही सही, अपने हिस्से की हर चीज को हासिल करना होगा, ताकि परिवार व समाज में स्वस्थ्य जीवन व्यतीत किया जा सके।

मैत्रेयी इस बात पर बल देती हैं कि स्त्रियों को समाज–संस्कृति, पुरुष की निरंकुशता, धर्मशास्त्र आदि के चौखटों को तोड़कर 'अपने' होने की जद्दोजहद को स्वयं पूरा करना होगा। यही जद्दोजहद मैत्रेयी के उपन्यासों की स्त्रियाँ भी करती हैं। 'खुली खिड़कियाँ' का सबसे सबल पक्ष यह है कि इसमें मैत्रेयी स्त्री को पुरुष जैसा होने के स्थान पर परिवार व समाज में स्त्री रहकर ही स्त्रीत्व का अधिकार माँगने और छीनने की सलाह देती हैं। ध्यान दें कि मैत्रेयी ने यहाँ जिस स्त्री की चर्चा की है वह किसी विशेष वर्ग या समुदाय की स्त्री नहीं, बल्कि वह एक साधारण स्त्री है, जो किसान है, मजदूर है और शिक्षित भी है।

दरअसल, स्त्री की समस्या केवल स्त्री की नहीं है, बल्कि पूरी समाज व्यवस्था की समस्या है क्योंकि समाज में हर व्यक्ति का अपना अस्तित्व होता है। जैसे पुरुषों का अपना अस्तित्व है, वैसे ही स्त्रियों का भी। पर आज इसी अस्तित्व और अस्मिता के लिए स्त्रियाँ संघर्ष कर रही हैं।

मैत्रेयी की पुस्तक 'सुनो मालिक सुनो' उनके अपने ही उपन्यासों से उपजे सवालों और आलोचनाओं का उत्तर देने मंच बनी है। इस पुस्तक में वे सवाल उठाए गए हैं, जिस पर उन्होंने अपने किसी भी उपन्यासो में विचार नहीं किया है। दहेज प्रथा जैसी जीवन को अभिशप्त कर देने वाली कुप्रथा पर उन्होंने अपने किसी भी उपन्यास में विचार नहीं किया है, इसलिए 'कन्या' निबंध में उन्होंने दहेज जैसी समस्या पर विचार किया है।

मैत्रेयी यह बता देना चाहती हैं कि इस दहेज जैसी परम्परा का वाहक पिता है, जिसने सरेआम अपनी बेटी के हक से जमीन, हवा, जल और आकाश छीना है। वे

कहती हैं कि अनमेल विवाह ही दहेज का कारण बनता है। इस अनमेल विवाह के बारे में मैत्रेयी का मानना है कि केवल आयु में अंतर ही अनमेल विवाह नहीं है बल्कि शिक्षा और योग्यता, रहन–सहन में अंतर, बुद्धि–विवेक में अंतर, पेशे और रोजगार में एक–दूसरे से बहुत ऊँचाई, बहुत निचाई को भी अनमेल विवाह के तत्व माने गए हैं। मैत्रेयी को दहेज और रिश्वत में कोई फर्क नजर नहीं आता। दोनों में 'एक हाथ लें और एक हाथ दें' की बात है।

'परिणीता' निबंध में मैत्रेयी विवाह संस्था के षड़यंत्रों को उजागर करती हैं। वह बताती हैं कि विवाह नाम की संस्था स्त्री को संपत्ति में बदल देती है। हर पुरुष को पत्नी पर एकाधिकार तो विरासत में मिलता है। उस एकाधिकार को खोना वैसा ही है, जैसे संपत्ति, घर, जमीन को खो देना। 'चाक' उपन्यास में जो उपाय बताए गए हैं, उससे उपजे प्रश्न का जवाब मैत्रेयी देती हैं। पाठक मैत्रेयी से सवाल करता है कि क्यों मैत्रेयी ने सारंग नैनी जैसी स्त्री की परिकल्पना की, जिसे हमारा समाज स्वीकारने को कतई तैयार नहीं है? असल में मैत्रेयी स्त्री को बता देना चाहती हैं कि उसकी पतिनिष्ठा और स्वामीभक्ति मिलकर ही पुरुष को मालिकीकरण की शानदार तस्वीर बनाती है। यही आदर्श चरित्र लड़कियों के 'ब्रेन' में बैठा दिया जाता है। उन्हें सीता, सावित्री, अहिल्या, पद्मिनी की तरह बनने की सीख दी जाती है।

मैत्रेयी इस तथ्य का भी खुलासा करती हैं कि बलात्कार के बढ़ते आंकड़ों के मूल में है स्त्रियों की बढ़ती चेतना को कुचलने की साजिश। मैत्रेयी कहती है जब अंततः नारी को 'देह' बनना ही है तो पुरुष के इशारे पर विवश–त्रस्त होकर क्यों बनें? क्यों नहीं अपनी 'देह' और 'स्व' को लेकर कर्ता भाव से वही निर्णय करे? पुस्तक का दूसरा खंड 'स्त्री मेरे पाठ में' के अंतर्गत चर्चित–अचर्चित, हिन्दी–हिन्दीतर कथाकारों द्वारा रची गई कथाकृतियों पर मैत्रेयी पुष्पा की समीक्षात्मक टिप्पणियों का संकलन है।

मैत्रेयी केवल लिखने के लिए नहीं लिखती हैं। अपने जीवन में उन्होंने जो देखा, भोगा और संघर्ष किया है, उसका चित्रण करती हैं। इस तथ्य का सबसे बड़ा प्रमाण है उनकी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै'। यह आत्मकथा व्यक्तिगत धरातल से

ऊपर उठकर सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति बन गई है। यह आत्मकथा मात्र आत्मकथा भर नहीं है, बल्कि मैत्रेयी की उस हिम्मती, कर्मठ और जिद्दी माँ कस्तूरी की भी कहानी है, जिसने सारा जीवन संघर्ष में ही व्यतीत किया। कस्तूरी के भीतर जो स्वाभाविक आग, अत्याचार के खिलाफ लड़ने का साहस और कुरीतियों की टीस है, वह उसे औरत मात्र को आन्दोलित करने वाली तेज धारदार चरित्र वाली औरत बनाती है। उसमें यह कहने का साहस है कि "मैं ब्याह नहीं करूंगी"।[7] यही साहस मैत्रेयी सभी स्त्रियों के अंदर लाना चाहती हैं ताकि वह कस्तूरी की भाँति अपनी तरह का जीवन जी सकें, घर की रूढ़ परम्परागत दहलीज को लाँघकर बाहर आ सकें।

मैत्रेयी के इस आत्मवृतांत में जहाँ मैत्रेयी और कस्तूरी की टकराहट है वहाँ एक विधवा स्त्री और कुँवारी युवती की भी टकराहट है। ऐसा नहीं है कि इस आत्मवृतांत में केवल माँ और बेटी के संबंध की जटिलता ही है, बल्कि मैत्रेयी अपने होने के अर्थ को अपनी माँ के होने में तलाशती है। यहाँ मुझे तस्लीमा नसरीन की आत्मकथा 'मेरे बचपन के दिन' और कौसल्या बैसंत्री के आत्मकथात्मक उपन्यास 'दोहरा अभिशाप' की याद आ रही है, जिसमें दोनों लेखिकाएँ अपना वजूद अपनी माँ में तलाशती हैं।

मैत्रेयी की आत्मकथा स्त्री परिप्रेक्ष्य के कई सवालों को हमारे सामने खड़ा करती है। मैत्रेयी यह सवाल उठाती है कि क्या एक विधवा स्त्री को अपने ढंग से जीने का अधिकार नहीं है? जीने के क्रम में अगर एक स्त्री बंधनों से मुक्ति चाहती है, तो क्या उसे मुक्ति नहीं मिलनी चाहिए? क्या स्त्री की देह पुरुषों के मात्र भोग के लिए या केवल प्रदर्शन के लिए ही बनी है? आज स्त्रियों की देह का इस्तेमाल फिल्मों को हिट बनाने में, पत्रिकाओं की बिक्री में, बॉस को खुश करने में हो रहा है। लगभग हर विज्ञापन में स्त्री देह को दिखाया जाता है, ताकि प्रोडक्ट की अच्छी–खासी बिक्री हो सके। क्या नारी का अपनी देह पर भी अधिकार नहीं? अगर सानिया मिर्जा अपनी इच्छा से छोटी स्कर्ट पहन ले तो बवाल हो जाता है। यदि कोई स्त्री अपनी इच्छा से किसी पुरुष से संबंध बनाती है तो कुल्टा, कुलच्छिनी, बेहया और न जाने क्या–क्या

कही जाती हैं। मतलब स्त्री अपनी इच्छा से करे तो बहुत बुरी है और यही काम कोई मर्द जबर्दस्ती करवाए या करे तो उसे वाहवाही मिलती है। क्या यह उचित है?

दूसरे स्तर पर कहें तो मैत्रेयी की इस आत्मकथा में, कहीं नारी मुक्ति की भिन्न चेतना का सवाल है तो कहीं स्त्रीत्व के नकार और स्वीकार का मसला भी। इसके साथ ही इसमें स्त्री की देह–चेतना का विमर्श भी उपस्थित है। इन सवालों की गूंज उनके उपन्यासों में भी सुनाई देती है। 'इदन्नमम' की बऊ, प्रेम और मंदा, 'चाक' की सारंग, कलावती, लौंगसिरी और 'अल्मा–कबूतरी' की अल्मा, कदमबाई सरीखी स्त्रियाँ इन्हीं प्रश्नों को उठाती नजर आती हैं। 'इदन्नमम' की मंदा और सुगना के साथ हुए बलात्कार मैत्रेयी पर हुए मर्दाना हमले को दर्शाते हैं। माँ कस्तूरी ने विधवा जीवन की जिन विडम्बनाओं को झेलते हुए, उन्हें पार करते हुए जीवन जिया है, वह 'इदन्नमम' की बऊ में दिखाई देता है। कस्तूरी के अंदर जो काम–भावना थी, वह 'इदन्नमम' की प्रेम में सहज अभिव्यक्त हुआ है। मैत्रेयी विधवा माँ कस्तूरी के संबंध में जो कहती है "विधवा को प्यास नहीं लगनी चाहिए तो क्या लगती भी नहीं? भूख–प्यास अच्छे कपड़ों की ललक सब निषेध है?"[8] उसकी झलक 'इदन्नमम' की मंदा की बातों में दिखाई देती है। मंदा अपनी माँ प्रेम को लक्ष्य कर कहती है कि "किस स्त्री में देह की भूख नहीं रहती? विधवा होने पर क्या सूख जाते हैं स्रोत।"[9] क्या एक विधवा औरत में देह की प्यास नहीं होती? मैत्रेयी ऐसे सवाल उठाकर समाज को यह बताना चाहती हैं कि एक विधवा औरत भी आम औरत की ही तरह होती है। विधवा होने पर उसकी इच्छाएँ मरती नहीं हैं, तब क्या उसे आम औरत की तरह जीने का अधिकार नहीं? 'अल्मा–कबूतरी' की अल्मा का संघर्ष के बाद राजनीति में प्रवेश कस्तूरी की राजनीति में प्रवेश को दर्शाता है।

इसमें शक नहीं कि मैत्रेयी ने जीवन में जो देखा, भोगा वही उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है। उनकी आत्मकथा मात्र उनकी ही आत्मकथा नहीं है, बल्कि यह ऐसी कई स्त्रियों की कथा है जो कस्तूरी एवं मैत्रेयी सरीखी हैं।

मैत्रेयी का रचना–संसार व्यापक सामाजिक–राजनीतिक जीवन के बीच से जीवन के अनेक पक्षों पर टिप्पणी करता है। इतना ही नहीं उनका रचना संसार इन

माध्यमों से लोक में प्रचलित मुहावरों, मान्यताओं के बीच से ही नारी उत्पीड़न के विरुद्ध बेचैन करने वाले प्रश्न भी उपस्थित करता है। मैत्रेयी केवल प्रश्न उठाने वाली लेखिका नहीं हैं, वे पात्रों के माध्यमों से प्रश्न उठाकर उनके समाधान की तरफ संकेत भी करती हैं। आमतौर पर यह माना जाता है कि जिस रचना में समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है, वह कई दृष्टियों से कमजोर हो जाती है। ऐसा प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' या उनकी कहानी 'बड़े घर की बेटी' के संदर्भ में कहा जाता है। लेकिन यहाँ यह बताना जरूरी है कि नारी समस्याओं को सिर्फ गिना देने या सिर्फ उसका शोषण दिखा देने भर से समस्या का समाधान नहीं होगा, इससे नारी की स्थिति समाज में सुधरेगी नहीं। इसीलिए मैत्रेयी एक तरफ स्त्री की नियति की नग्न वास्तविकता को उजागर करती हैं तो दूसरी तरफ उसके संघर्ष, विद्रोह आदि को स्वर देते हुए समस्या के समाधान का संकेत भी देती हैं।

मैत्रेयी के उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी जीवन

मैत्रेयी ने नारी जीवन के समकालीन संदर्भों को स्वर प्रदान किया है। नारी के विविध रूप, शोषण, दमन आदि समस्याओं को वे अपने उपन्यासों में रेखांकित करती हैं। आज कम्प्यूटर युग में भले नाना प्रकार के विकास हुए हों, पर आज भी नारी कई स्तरों पर शोषित है। उन्हें 'सेकेंड सेक्स' यानी 'उपेक्षिता', 'अन्या', दोयम दर्जे का माना जाता है। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी के माध्यम से इसे ठीक–ठीक समझा जा सकता है, "विपन्न मानसिकता के दोमुँहे समाज में आज भी नारी मात्र वस्तु! मात्र संपत्ति! विनिमय की चीज है।" [10]

पुरुष नारी को उपभोग की वस्तु ही समझता है, वरना 'इदन्नमम' की मंदा का मामा कैलाश मास्टर क्यों उसके साथ बलात्कार करता है? अभिलाख सिंह सुगना के साथ बलात्कार क्यों करता है? क्यों 'अगनपाखी' की भुवन या 'कही ईसुरी फाग' की रज्जूराजा पुरुषों के हाथों शोषित होती है? ऐसा लगता है कि नारी का यह शोषण वस्तुतः देह के कारण ही होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह 'देह धरे को दंड है'।

एक स्त्री को शोषण और बंधनों के साथ उसे वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं समझा जाता है। इस तथ्य को प्रभा खेतान की निम्न पंक्तियों में भलीभाँति उद्‌घाटित किया गया है–

"मैंने अपने को
पहनाया तुम्हारे पावों में
जूती, बिस्तरे पर
चादर बन,
कभी टंगी खूटी पर
तुम्हारा मुखौटा बन
मैं बनी वस्तु,
तुम रहे भोक्ता"[11]

सीमोन द बोउवार जैसी स्वतंत्र एवं स्वच्छंद विचारों की मलिका ने भी अपनी पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' में विश्व की महिलाओं का सर्वेक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि महिलाएँ सर्वत्र उपभोग की वस्तु समझी जाती हैं। उनका नाना प्रकार से शोषण होता है– कभी शारीरिक, कभी मानसिक और कभी आर्थिक स्तर पर। प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की प्रिया इस बात को अच्छी तरह जानती है कि वह नारी होने के कारण ही विविध क्षेत्रों में शोषित हो रही है। प्रिया कहती है कि "औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बॉथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग–ऐश्वर्य के बावजूद मेरी सासु जी की तरह पलंग पर रातभर अकेले करवटें बदलते हुए। हाड़–माँस की बनी ये औरतें..... अपने–अपने तरीके से जिन्दगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें! हजारों सालों से इनके ये आँसू आ रहे हैं।"[12] प्रिया जानती है कि "इस भोगवादी समाज में औरत क्या रह गई है... महज एक जिंस।"[13]

दरअसल, समाज में स्त्री मात्र स्त्री है। वह चाहे अमीर हो या गरीब हो, उच्चवर्ग की हो या निम्नवर्ग की। पुरुष समाज उसे एक ही मानता है। अपने जीवनानुभव से मैत्रेयी भी यह महसूस करती हैं कि "स्त्री होने के कारण ही वह मर्दों

के हमले झेलती है... उसकी लूट स्वादिष्ट मिठाई की लूट होती है, जिसे कोई जब चाहे खा ले... वह घर में रहे या कोठे पर पुरुष के लिए सुविधा साधन का ही रूप है।''[14]

यह भी मान्यता है कि लैगिंक विभेद होने के कारण ही स्त्रियों का हर क्षेत्र में शोषण होता है। इसीलिए मैत्रेयी इस पुरुष सत्तात्मक समाज से संघर्ष की सलाह देती हैं। मैत्रेयी की रचनाओं में खास बात यह है कि इसमें नारी चेतना का एक अलग आयाम दिखाई देता है। यह आयाम मात्र नारी शोषण, उनके दमन, उनकी समस्याओं के वर्णन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उससे आगे बढ़कर उन समस्याओं के समाधान का संकेत प्रदान करने वाला है। यह संकेत कहीं संघर्ष तो कहीं विद्रोह के रूप में वर्णित है। मैत्रेयी एक स्वच्छंद विचार वाली लेखिका हैं। वे कहती हैं कि अगर किसी के साथ बलात्कार हुआ है तो उसे भी अन्य महिलाओं की ही तरह जीना चाहिए, क्योंकि इसमें उसका कोई दोष नहीं। कुसुमा मंदा को यही समझाती है, ''जो तुमने किया ही नहीं, उसके लिए अपने को दोषी क्यों मानना?''[15] यहाँ कुसुमा के रूप में मैत्रेयी के विचार सामने आते हैं।

शारीरिक संबंधों को लेकर आज भी हमारे समाज में संस्कारबद्ध जड़ता और संदेहशीलता की प्रवृत्ति विद्यमान है। स्त्री के जीवन में आने वाला वह पहला पुरुष नहीं है, उससे पहले भी कोई आ चुका है, यह तनाव पुरुष को घुन लगे काठ की तरह खोखला कर देता है और इसकी परिणति संबंधों के विच्छेद तक में होती है। यहाँ मुझे ममता कालिया का उपन्यास 'बेघर' याद आ रहा है। यह उपन्यास स्त्री के कौमार्य को लेकर पुरुष समाज में आज भी जो रूढ़ धारणाएँ हैं, उन पर चोट करता है। स्त्री की अनिच्छा, असहयोग और संपूर्ण विरोध के बावजूद यदि कोई पुरुष उसके साथ बल प्रयोग कर दे, तो क्या मात्र उसी दुर्घटना के कारण स्त्री का आगामी संपूर्ण जीवन विषाक्त हो जाएगा? वह कभी सहज जीवन न जी सकेगी? उसकी पहचान, उसकी निजता, उसका अस्तित्व– सब कुछ चुक जाएगा? समाज की इस अमानवीय और रूढ़िबद्ध धारणा को मैत्रेयी नहीं मानतीं और 'इदन्नमम' की मंदा को एक सहज जीवन जीने की छूट देती हैं।

शारीरिक शोषण के साथ–साथ स्त्रियों को मानसिक यातनाएँ भी झेलनी पड़ती हैं। यह समाज बचपन से ही लड़कियों के मन में यह बात बैठा देता है कि वह लड़की है, जिसे न तो तेज स्वर में बात करने का अधिकार है, न तर्क–वितर्क का और न ही कहीं आने–जाने का। उसे जिस खूँटे से बाँध दो, चुपचाप चली जाएगी, तो क्या वह एक जानवर है? "बेटी तो मुख जोहती गैया है रे... काउ खूंटा बाँध दो, भोली बछिया सी चल देत है... जितै चाहौ उतै ही।"[16] इसी कारण 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी घर–परिवार की, इस समाज की रूढ़ियों, अंतहीन, अंधविश्वासों, अशिक्षा के अंधेरों और अनगिनत अमानवीय यंत्रणाओं के बीच चुपचाप तिल–तिल मृत्यु की ओर अग्रसर होती है, पर मुँह से उफ तक नहीं कहती।

भारतीय समाज में स्त्री को जन्म से ही अबला बना दिया जाता है। स्वतंत्रता की भावना को उसकी जिंदगी और सपनों से भी दूर रखा जाता है। 'न स्त्री को अपने जीवन का कोई लक्ष्य बनाने का अधिकार है और न समाज द्वारा निर्धारित विधान के विरुद्ध कुछ कहने का। उसका जीवन पुरुष के मनोरंजन तथा उसकी वंशवृद्धि के लिए इस प्रकार चिरनिवेदित हो चुका है कि उसकी सम्मति पूछने की आवश्यकता का अनुभव भी किसी ने नहीं किया। वातावरण भी धीरे–धीरे उसे ऐसे ही मूक आज्ञापालन के लिए प्रस्तुत करता रहता है।' आज के समय में शहरी मध्यवर्ग और उच्चवर्ग की कुछ शिक्षित स्त्रियाँ इस स्थिति से बाहर निकली हैं और निकल रही हैं, लेकिन भारतीय गाँवों में रहने वाली अधिकांश स्त्रियाँ अभी भी ऐसे ही वातावरण में जीने और मरने के लिए अभिशप्त हैं।

मैत्रेयी पहले ही बता चुकी हैं कि पितृसत्ता एक शोषणकारी प्रक्रिया है, जिसमें स्त्री धीरे–धीरे कब भौतिक गुलाम से मानसिक गुलाम में बदल जाती है, उसे पता ही नहीं चलता। परिणामस्वरूप उसे स्त्रीत्व की रक्षा के लिए जान तक गँवानी पड़ती है। वह अपने ही हाथों अपने विकास की तमाम संभावनाओं को रोक देती है। लेकिन किसी प्रकार के प्रश्न का साहस नहीं कर पाती। मैत्रेयी के उपन्यास 'बेतवा बहती रही' में उर्वशी की यही नियति हुई है। एक विधवा स्त्री की समाज में क्या स्थिति होती है, उसे उसके ही घर में किस स्थिति में डाल दिया जाता है, उस पर किस

प्रकार के शोषण होते हैं यह 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी के माध्यम से देखा जा सकता है। इस भय ग्रस्त समाज में वह निरंतर ढहने को अभिशप्त है। ऐसे यातनादायक माहौल में वह भला अब कैसे रह सकती है? वह तय करती है कि 'अपनी तकदीर के साथ अकेली चलेगी, निपट अकेली'। पर होता क्या है? अन्ततः उसकी कारुणिक मृत्यु होती है। अगर उर्वशी भूल से भी सतीत्व के स्थान पर अस्तित्व की माँग कर बैठती या फिर अपनी सामाजिक व सांस्कृतिक राहें स्वयं निर्धारित करके वस्तु से मनुष्य रूप में जीने की माँग करती तो निश्चय ही यह समाज उसे उसकी औकात बता देता। उर्वशी चुपचाप सबकुछ सहती है, इसीलिए वह पुरुषों को मंदा, कुसुमा, अल्मा या रज्जो के बनिस्बत ज्यादा अच्छी लगती है।

हमारा पितृसत्तात्मक समाज यह कभी बर्दाश्त नहीं करेगा कि कोई विधवा पुनर्विवाह करे या किसी से शारीरिक संबंध स्थापित करे। पुरुष स्वयं चाहे जितनी स्त्रियों से संबंध बनाए, विवाह करे, लेकिन अगर प्रेम या कुसुमा सरीखी स्त्रियाँ दूसरे पुरुष से संबंध बनाएँ तो यह समाज उसे गालियों, टिप्पणियों से छलनी कर देता है। क्या सारी नैतिकता स्त्रियों के दामन से ही बंधी होनी चाहिए? जब एक पुरुष अपनी पत्नी पर ध्यान नहीं देगा तो वह क्या करेगी, कुसुमा इसका जवाब माँगती है। "अग्नि साक्षी करके ही आए थे तुम्हारे पूत के संग। सात भाँवरें फिर के? लिहाज रखा उसने? निभाया संबंध? दूसरी बिठा दी हमारी छाती पर। उस दिन से कोई संबंध, कोई नाता नहीं रहा हमारा, जो ब्याह कर लाया था उससे ही कोई ताल्लुक नहीं तो इस घर में हमारा कौन ससुर और कौन जेठ?"[17] कुसुमा का यह वक्तव्य उस पुरुषवादी नैतिकता के खिलाफ है जो पुरुष को खुली छूट देकर सदाचार का सारा जिम्मा औरतों के मत्थे मढ़ देता है। स्त्री को ही अग्नि परीक्षा देने के लिए क्यों कहा जाता है? पुरुष भी पवित्र रहने का साक्ष्य क्यों नहीं देता? मंदा का यह कथन इसी तरफ संकेत कर रहा है। "गाँव में छह–आठ ऐसे जोड़े हैं जिन्होंने दूसरा विवाह किया है। माना की पुरुष हैं, तो क्या अम्मा स्त्री होने के नाते दंड की, माखौल की, हेय दृष्टि की भागीदार है? यदि ऐसा नहीं है तो उन पुरुषों से अटपटे प्रश्न क्यों नहीं पूछता कोई? उन्हें क्यों नहीं निकाल देता घर से कोई?"[18] यह कहकर मंदा

संस्कारवादी सामाजिक वर्जनाओं के दोहरे मापदण्ड का पोल खोलती है। यह एक दोहरा मानदण्ड है कि पुरुष बहुविवाह कर सकता है। एक साथ कई पत्नियाँ रख सकता है। पर यदि किसी स्त्री ने यह दुस्साहस किया– विवाह तो दूर यदि उसके एकाधिक पुरुष से संबंध स्थापित हो जाते है– वह अपमानजनक टिप्पणियों से छलनी कर दी जाएगी।

भारतीय समाज में स्त्री की गुलामी की सर्वग्रासी प्रक्रिया का बुनियादी कारण है आर्थिक दृष्टि से स्त्री की पुरुष पर निर्भरता। महादेवी वर्मा ने भी इस बात को स्वीकार किया है। "समाज ने स्त्री को पुरुष की सहायता पर इतना निर्भर कर दिया है कि उसके सारे त्याग, सारा स्नेह और संपूर्ण आत्मसमर्पण बंदी के विवश कर्त्तव्य के समान हैं।"[19] समाज में स्त्री की आर्थिक पराधीनता सर्वव्यापी है। वह पुत्री, बहन, पत्नी, माता अथवा विधवा और वेश्या आदि रूपों में आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में ही पुरुष के अन्याय की मार सहती है। यह कहना गलत न होगा कि स्त्री की आर्थिक स्वाधीनता उसकी सामाजिक स्वाधीनता के लिए आवश्यक है। स्त्री की आर्थिक परनिर्भरता से जुड़ी है उसकी सामाजिक विवशता। पुरुष आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के कारण ही सामाजिक रूप से स्वच्छंद होता है और उसकी सामाजिक स्वच्छंदता स्त्री को अपना शिकार बनाती है– घर और बाहर समाज में भी।

आज किसी की भी स्थिति की मुख्य कसौटी आर्थिक होती है और उसी के आधार पर उसकी सामाजिक स्थिति बनती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक स्थिति को आर्थिक स्थिति से काटकर नहीं देखा जा सकता और इस समाज में अधिकांश महिलाओं की आर्थिक स्थिति कमजोर है। जाहिर है ऐसे में उनकी सामाजिक स्थिति भी चिंताजनक हो जाती है। आमतौर पर स्त्रियाँ आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर हैं यानी वे सदा से पुरुषों पर आश्रित देखी गई हैं। बचपन में वे माता–पिता पर आश्रित होती हैं और बड़ी होकर पति पर। यदि कुछेक स्त्रियाँ कमाती भी हैं तो ये पुरुष वर्चस्व समाज उनकी आय को आय ही नहीं मानता। अगर वे घर में रहती हैं तो सबेरे से रात तक काम में व्यस्त रहती हैं, किंतु उनके काम को काम नहीं माना जाता। कुछ पढ़ी–लिखी महिलाएँ नौकरी व अन्य काम–धंधों में जाने लगी

तो उनमें आत्मनिर्भरता आयी, लेकिन विरोधाभास है कि उनमें से अनेक इस आत्मनिर्भरता के बावजूद अक्सर पारिवारिक और अन्य प्रकार की हिंसा की शिकार हो जाती हैं। यही नहीं अपने कार्यस्थल पर वे पुरुष सहयोगियों या अपने से उच्च पद पर आसीन अधिकारियों से कई बार प्रताड़ित भी होती हैं। अक्सर उन्हें पुरुष की तुलना में अधिक जिम्मेदारी तथा महत्वपूर्ण कार्य नहीं दिए जाते हैं।

स्त्री के शारीरिक एवं मानसिक शोषण के पीछे आर्थिक समस्याओं का बहुत बड़ा हाथ है। स्त्रियाँ विवाह क्यों करती हैं? दहेज प्रथा क्यों शुरू हुई? जाहिर है कि बेटी को सुरक्षा एवं सुख–सुविधा देने के उद्देश्य से ही विवाह एवं दहेज जैसी प्रथाएँ प्रचलित हुईं। इसी विवाह संस्था की असमानता ने स्त्रियों को आर्थिक रूप से परतंत्र बना दिया। आज भले ही बहुत सी औरतें पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हैं, पर कितनी हैं ऐसी पढ़ी–लिखी जो वास्तव में स्वतंत्र हैं? घर–बाहर आज भी वे पुरुषों के अधीन हैं। मैत्रेयी की माँ कस्तूरी इस व्यवस्था या घर की यातना से छुटकारा पाने के लिए ही पढ़–लिखकर नौकरी का जो रास्ता अपनाती है, उससे क्या वह इस पुरुषवादी समाज के चौखटों से मुक्त हो पायी? इसीलिए मैत्रेयी सोचती हैं कि जब नौकरी और तरक्की के लिए माँ को यदि मर्दों का ही कृपाकांक्षी होना है तो वह क्यों करे नौकरी? यही वे परिस्थितयाँ हैं जिसमें मैत्रेयी नौकरी नहीं बल्कि शादी में अपनी 'मुक्ति का रास्ता' तलाशती है। मैत्रेयी का कहना भारतीय समाज की वह सच्चाई है जहाँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर भी कामकाजी औरतों की अपनी कोई स्वतंत्र पहचान नहीं है। "इस समाज में वे मनुष्य तो क्या औरत भी नहीं, राड़ हैं, विधवा बस। ऊपर से निपूती... पुरुषों जैसे काम करने से पुरुष जैसी नहीं मान ली जाती स्त्री। सामाजिक कार्यों के चलते उसे किसी पुरुष की जरूरत होती है, भले ही वह पांच या दो साल का हो।"[20] कस्तूरी नौकरीपेशा होकर भी अपनी बेटी की शादी संबंधी बातचीत करती है, इसलिए वह पुरुषों को पसंद नहीं आती।

गाँव में आज भी स्त्रियों की स्थिति बदतर ही है। 'इदन्नमम' की बऊ पढ़ी–लिखी नहीं है, फिर भी अपने स्तर से अपनी पोती मंदा को जीवित रखने एवं उसकी जिंदगी संवारने के लिए जमीन–जायदाद बचाना चाहती है, लेकिन वह

जमीन–जायदाद बचा नहीं पाती है। अभिलाख सिंह धोखे से सब अपने नाम करवा लेता है। मंदा की माँ प्रेम भागकर दूसरा विवाह तो अवश्य करती है, परन्तु शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक तीनों स्तर पर शोषित भी होती है। रतन यादव प्रेम के शरीर का उपभोग कर उसकी सारी संपत्ति हड़प लेता है और वह कुछ नहीं कर पाती।

दाम्पत्य जीवन में पति–पत्नी के मध्य तालमेल और समायोजन बहुत जरूरी है। इसके अभाव में दाम्पत्य जीवन लड़खड़ा जाता है। पति–पत्नी का दाम्पत्य जीवन यदि स्वस्थ और सहज न हो तो उनका पारिवारिक जीवन विश्रृंखल हो जाता है। एक पुरुष अपनी इच्छानुसार कई पत्नियाँ रख लेता है। फलतः बंटी हुई रातें, अपनी बारी में ही पति का सान्निध्य पाने का अधिकार, भावुक मन की पत्नी में गहरी तड़प भर देता है। लेकिन अगर पुरुष को ये पता चले कि उसकी पत्नी के पहले भी किसी पुरुष से संबंध रहे हैं तब उसकी खैर नहीं...। इसी डर से 'छिन्नमस्ता' की प्रिया अपने पति नरेंद्र से शादी से पहले अन्य पुरुष से संबंध की बात छिपाती है।

असल में कुँआरेपन को लेकर जो अपराधबोध अक्सर लड़कियों को रहता है, प्रिया को भी है। साफ–साफ बताना तो चाहती है, लेकिन उसे डर लगता है, क्योंकि प्रायः पति इस बात को सहज स्वीकार ही नहीं कर पाता, कि उसकी पत्नी के शादी से पहले या बाद में किसी अन्य पुरुष से संबंध रहे हों या रहे। भले ही खुद जो मर्जी आए, करते रहें। ऐसे माहौल में प्रिया सच बोलने की हिम्मत कैसे कर सकती है। इस व्यवस्था की स्वीकृति के साथ–साथ सुरक्षा के लिए प्रिया रातों–रात करोड़पति की बीवी बन जाती है। वह एक बड़े घर की बहू है।

दाम्पत्य जीवन में दरार और विघटन आज की नारी समस्याओं में प्रमुख है। क्या घर–गृहस्थी चलाने का ठेका एक स्त्री के सिर पर ही है? क्या सुखद दाम्पत्य में पुरुषों की भूमिका नहीं है? स्त्री और पुरुष दोनों को गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिए के रूप में माना गया है। किसी एक की भी कमी से घर–गृहस्थी नहीं चल सकती, तब क्यों परिवार बिखरने पर स्त्रियों को दोषी माना जाता है?

दाम्पत्य जीवन को जोड़ने का काम कामवृत्ति भी करती है, जब पति–पत्नी के बीच शारीरिक संबंध में समायोजन न हो पाए तो उनके मानसिक जगत में भी दूरी आ

TH-13563

Jawaharlal Nehru University Library

जाती है। काम–भावना की असंतुष्टि नारी को क्षुब्ध और विचलित बना देती है। 'झूला नट' की शीलो तो अपने पति के स्पर्श से भी वंचित रह गई। पति उसकी छाया से भी दूर भागता था, क्योंकि शीलो उसे नीले, बैगनी रंग की नजर आती और उसकी छह उंगुलियाँ थीं। शीलो को पति का सुख तो कभी नहीं मिला पर देवर से प्रेम जरूर मिला। इसी प्रेम के कारण शीलो के अंदर काम–भावना जागृत होने लगी, फलस्वरूप देवर बालकिशन से उसका संबंध हो गया। अगर शीलो का दाम्पत्य जीवन सुखी होता तो शायद उसका संबंध कभी अपने देवर से न होता। 'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी भी दाऊजी से संबंध क्यों बनाती? ये दोनों स्त्रियाँ पति की उपेक्षा, अपमान और तिरस्कार पाकर ही दूसरी तरफ झुकती हैं। पर ऐसा नहीं है कि केवल पुरुष के प्रति ही स्त्रियों का झुकाव होता है। कई बार स्त्रियाँ अपने दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट होकर एक स्त्री की तरफ भी झुक जाती हैं। जैसे फिल्म 'फायर' में नंदिता दास का संबंध अपनी जेठानी शबाना आजमी से हो जाता है। असल में दोनों के पति अपने–अपने काम में इतने व्यस्त होते हैं कि अपनी पत्नी की तरफ उनका ध्यान नहीं रहता। ऐसे अकेलेपन में दोनों देवरानी–जेठानी को एक–दूसरे का साथ मिलता है। यह मेल मानसिक मेल से शुरू होकर शारीरिक संबंध तक पहुँच जाता है।

क्या प्यार अंधा होता है? शायद हाँ, तभी वह रिश्तों को अनदेखा कर देता है। भाई–बहन या जीजा–साली का या मौसी–बेटे का? एक जीता–जागता उदाहरण है प्रो. मटुकनाथ चौधरी और छात्रा जूली का प्रेम, जिसमें न तो उम्र की कोई सीमा है और न ही रिश्ता कोई मायने रखता है। एक ऐसे ही रिश्ते में पनपते प्यार को मैत्रेयी ने अपने उपन्यास 'अगनपाखी' में दिखाया है। भुवन अपनी बहन के बेटे चंदर से प्यार करती है। चूँकि बचपन से ही दोनों साथ–साथ खेले–कूदे हैं, ऐसे में दोनों का एक–दूसरे से लगाव हो जाता है, लेकिन यह प्यार कब सीमा लाँघकर बिस्तर तक पहुँच जाता है, पता नहीं चलता। यहाँ अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' की शशि और शेखर के संबंध का जिक्र लाजिमी है, शेखर का अपनी मौसेरी बहन शशि से प्रेम संबंध एक नई और चौकाने वाली बात है। हालाँकि यह बात समाज में स्वीकार्य नहीं है और यह वर्जित ही नहीं, अनैतिक भी मानी जाएगी। बावजूद इसके

इस तरह के संबंध को दिखाकर मैत्रेयी एवं अज्ञेय दोनों इन सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ खड़े दिखाई दे रहे हैं। दोनों उपन्यासों में एक ऐसे रिश्ते के बीच पलते प्यार को देखकर संस्कारवादी लोगों की भौहें तन जाएँगी और उंगुलियाँ उठने लगेंगी। ऐसे लोगों की लाँछन उपेक्षा का शिकार एक स्त्री को सहनी होगी। आखिर क्यों एक औरत ही जोर–जुल्म सहें? मैत्रेयी भुवन और चंदर के इस रिश्ते के जरिये इस पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती दे रही हैं।

मैत्रेयी के उपन्यासों में नारी संघर्ष का रूप

मैत्रेयी के नारी पात्र परम्परागत रूप से चारदीवारी में कैद होकर रहना मंजूर नहीं करते हैं, बल्कि पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित नैतिक मर्यादाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाते चलते हैं। साथ ही वे इस दीवार को लाँघते–तोड़ते भी नजर आते हैं। जीवन और जीवनमूल्यों से गहरा लगाव और जुड़ाव उनके स्त्री चरित्रों में दिखाई देता है। इस कारण उनके उपन्यासों की स्त्रियाँ जीवन में यातना और उपेक्षा की शिकार होकर पराजित हो भी जाती हैं तो पुरुष सत्ता के आगे समर्पण या समझौता नहीं करतीं। वे परिस्थितियों से हार नहीं मानती और न ही उनसे पलायन करने की कोशिश करती हैं, बल्कि उन्हीं परिस्थितियों के बीच रहकर संघर्ष करती हैं। यह संघर्ष केवल उपन्यासों की नायिकाएँ (अल्मा, रज्जो, मंदा, भुवन आदि) ही नहीं करतीं, बल्कि अन्य सभी नारी पात्र (कुसुमा, कदमबाई, ऋतु की माँ विमलेश) भी करते हैं। अपने समय की औरत के इतने 'शेड्स' या छायाएँ और कहीं ढूढ़ना मुश्किल ही नहीं, असंभव भी होगा। मैत्रेयी के नारी पात्रों की विविधता और गहराई ही उनकी रचनाओं को विशिष्टता प्रदान करती हैं।

मैत्रेयी की रचनाओं में अभिव्यक्त नारी संघर्ष केवल उनका ही संघर्ष ही नहीं है। एक स्तर पर वह संपूर्ण नारी जाति का संघर्ष है। 'अगनपाखी' की भुवन विजयसिंह से ब्याह दी जाती है, लेकिन भुवन उसके घर आकर घुटती रहती है। आखिर भुवन भी कब तक इस घुटन को सहती रहती। कालांतर में वह विद्रोह पर

उतर आती है। इसी विद्रोही प्रवृत्ति का परिणाम था कि विजयसिंह की मृत्यु के बाद जब उसे सती बनाकर जला देने का षड्यंत्र रचा जाता है तो वह इनकार कर देती है और भाग जाती है। भुवन की तरह ही हमारे समाज की औरतें संघर्ष करने लगें तो क्या मजाल है कि कोई उन्हें सती होने को मजबूर कर सके। यहाँ मैत्रेयी की माँ कस्तूरी की याद आ रही है। उसने भी सती होने से इंकार कर दिया था। यही संघर्ष और विद्रोह का भाव मैत्रेयी के जीवन में गहरे उतर गया है। मैत्रेयी का यह विद्रोह सड़कों और मंचों पर अभिव्यक्ति पाने वाला केवल कागजी नारों का विद्रोह नहीं है। यह विद्रोह जीवन के कर्म–क्षेत्र का विद्रोह है। सच कहें तो एक स्तर पर यह शोषण के खिलाफ समाज के वंचित और शोषित व्यक्तियों का ही संघर्ष है। शोषित कौन! वंचित कौन! निःसंदेह स्त्री, जिसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। इसीलिए मैत्रेयी की रचनाओं में नारी अस्मिता के साथ नारी के अस्तित्व को बचाने का प्रश्न ज्यादा महत्वपूर्ण है। यही आज की नारी की मुख्य समस्या भी है। शायद यही वह तत्व है जो मैत्रेयी को समकालीन लेखिकाओं से अलग करता है।

मैत्रेयी ने ग्रामीण स्त्रियों के संघर्ष को अपनी लेखनी द्वारा जीवंत कर दिया है। इनके स्त्री पात्र वे ग्रामीण औरतें हैं जिनके पास न रोटी का ठिकाना है और न ही कोई संरक्षण जब ऐसी औरतें संघर्ष करें, तो उनका संघर्ष ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। इसीलिए मैत्रेयी यह मानती हैं कि 'नारी चेतना से संबंधित आन्दोलनों की आवश्यकता शहरों से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में है, क्योंकि शहर की तुलना में ग्रामीण नारी अधिक शोषित है।' मैत्रेयी का यह कथन गलत नहीं है। शहरी नारी जहाँ अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाए रखने के लिए संघर्ष करती है, जैसे 'विजन' की डॉक्टर नेहा, वहीं ग्रामीण औरतों को जीवित रहने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है, जैसे–'इदन्नमम' की प्रेम, अहिल्या आदि। वहाँ 'व्यक्तित्व' का संघर्ष है तो यहाँ 'अस्तित्व' का। ग्रामीण नारियों के इसी संघर्ष की प्रबल और प्रखर अभिव्यक्ति मैत्रेयी की रचनाओं में हुई है। ऐसा नहीं है कि मैत्रेयी शहरी नारियों की संवेदना को समझती ही नहीं हैं। मैत्रेयी शहरी औरतों के कष्ट, इनकी स्थिति, इनकी समस्याओं से वाकिफ हैं। इस बात का प्रमाण उनका उपन्यास 'विजन' है।

'विजन' उपन्यास की डॉक्टर नेहा और डॉक्टर आभा द्वारा मैत्रेयी भ्रष्ट अमानवीय चिकित्सा संस्थानों में स्त्री की कराहें हम तक पहुँचाना चाहती हैं। मैत्रेयी का जिस बात पर जोर है वह यह कि इस पितृसत्तात्मक समाज में हर नारी, चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण, परिवार एवं विवाह जैसी संस्थाओं द्वारा शोषित होती हैं। वे पुरुष और स्त्री दोनों की स्वतंत्रता और अस्मिता को बराबर महत्व देने की बात करती हैं।

असल में मैत्रेयी नारी को ग्रामीण एवं शहरी खेमों में बाँटकर नहीं देखतीं, बल्कि वे नारी के अस्तित्व एवं अस्मिता को बचाने की कोशिश कर रही हैं। क्या है नारी अस्मिता? दरअसल, यह "पुरुष के समान स्त्री का अधिकार, स्त्री के प्रति विवेकमूलक दृष्टिकोण तथा स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व का प्रतिरोध है।"[21] औरत का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय ले सकना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है। सही मायने में अस्मिता का अर्थ-- स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव है। इसमें स्त्री का निजी दृष्टिकोण भी शामिल है।

यह सच है कि पिछले दो सौ वर्षों में स्त्रियों ने बहुत से क्षेत्रों में काफी तरक्की की है। कुछ औरतों के लिए सामाजिक बंधन भी कम हुए हैं। कुछ कानून भी बदले हैं। हमारे संविधान ने औरतों को बराबरी का दर्जा भी दिया है, परन्तु इसके बावजूद भी आज समाज में स्त्रियों को न समान अधिकार है और न पूरी आजादी। आज भी लगभग हर जगह पुरुष सत्ता का बोलबाला है, जो नहीं चाहता कि स्त्रियाँ स्वच्छंद होकर खुली हवा में साँस ले सकें।

यह समाज आर्थिक रूप से स्त्रियों को पंगु बनाकर रखना चाहता है। इसलिए कई बार ऐसा होता है कि अर्थाभाव ही नारी को अपना तन, अपनी अस्मिता बेचने के लिए बाध्य करता है, उसे विकास का अवसर नहीं देता। एंगेल्स ने लिखा है कि 'आर्थिक पराधीनता नारी शोषण के विविध क्षितिज तलाशती है, इसलिए उनका कामकाज में लगना, सार्वजनिक उपक्रमों में उनकी नियुक्ति अनिवार्य है।' नारी घर के कामकाज में समर्पित हो गई तो सारा परिवार उसी पर निर्भर करने लगता है। यह भी उसका प्रत्यक्ष शोषण है। इस समाज में स्त्री का महत्व उसकी प्रजनन क्षमता के कारण तो है ही, उसकी काम करने की क्षमता के कारण भी है। असल में दिक्कत

यह है कि पुरुष काम करते और कमाकर लाते दिखाई देते हैं, जबकि स्त्रियाँ काम और कमायी करती नजर नहीं आतीं, क्योंकि उनके घरेलू काम को तो काम माना ही नहीं जाता। कमाकर लाने के लिए घर से बाहर जाकर किए जाने वाले उनके काम को भी– चाहे वह खेती हो या पशुपालन, मजदूरी या नौकरी– पुरुषों के द्वारा किए जाने वाले काम की तुलना में बहुत कम महत्वपूर्ण माना जाता है। मैत्रेयी इस बात को भलीभाँति जानती हैं इसलिए 'इदन्नमम' की मंदा घर के कामकाज तक सीमित नहीं रहती, बल्कि बाहर निकलकर गाँव वालों की मदद करती है। हालाँकि वह ज्यादा पढ़ी–लिखी नहीं है, फिर भी उसकी बुद्धि शिक्षित से कम नहीं है। गाँव में रहकर ही वह अस्पताल बनवाती है। कई सामाजिक और राजनैतिक संगठनों से उसके संबंध हैं। देखा जाए तो ये सभी उसके व्यक्तित्व के विकास में सहयोग देते हैं। कुछ विद्वानों को आपत्ति इस बात में है कि मंदा गाँव में रहकर इतनी सक्रिय कैसे हो सकती है। इसलिए वे उसके चरित्र को वास्तविक रूप में नहीं देखते। वह महज एक मनगढ़ंत पात्र लगती है।

यहाँ यह बता देना जरूरी है कि मैत्रेयी ग्रामीण स्त्रियों के संघर्ष को दिखाकर एक तरह से उनकी समस्याओं के समाधान का संकेत दे रही हैं। 'इदन्नमम' की सुगना बलात्कार के बाद आत्महत्या कर लेती है। यह देखकर विद्वानों को सुगना ज्यादा वास्तविक लगेगी बनिस्बत मंदा के। लेकिन अगर मैत्रेयी यह दिखाती कि सुगना आत्महत्या के बजाय अभिलाख सिंह की हत्या करके प्रतिशोध लेती और बचाव के लिए मुकद्मा लड़ती, तो सचमुच बदलती हुई स्त्री की नई छवि उभर कर आती, जैसा कि मंदा के चरित्र से लगता है। वह बलात्कार की शिकार होकर भी टूटती नहीं है, बल्कि दोगुने जोश के साथ हमारे सामने आ खड़ी होती है। वह अपनी मुक्ति के लिए दृढ़ संकल्प है–

"मैंने नाप लिये हैं हजारों आकाश
फिर भी
एक और आकाश की खोज में चल पड़ी हूँ।
मैं सब सह लूंगी

क्योंकि आज मेरे
खून का हर कतरा
आग के शोलो सा
आतुर है
अपनी काली भविष्यवाणियों
को लोहित करने।''[22]

ये सच है कि अधिकांश नारियाँ शोषण सह लेती हैं, पर कई महिलाओं ने साहसपूर्वक यथास्थिति से विरोध की बुलंद आवाज उठाई है। मंदा, अल्मा, सारंग, भुवन या रज्जो ऐसे ही पात्र हैं। मैत्रेयी की यही तो खासियत है कि उनके नारी पात्र जोर–जुल्म सहकर चुप नहीं बैठते, बल्कि संघर्ष करते हैं, विद्रोह करते हैं। 'इदन्नमम' में बऊ परम्परागत मान्यताओं में अधिक दृढ़ नजर आती है। लेकिन रतन यादव जैसे आदमी के आगे हार नहीं मानती, बल्कि संघर्ष करती है। भले ही उनकी सारी जमीन–जायदाद धोखे से अभिलाख सिंह हड़प लेता है। बऊ के चेहरे पर शिकन तक नहीं आती। मंदा की विधवा माँ रतन यादव जैसे औरत पसंद आदमी के साथ भागकर विवाह कर लेती है, परन्तु उसके हाथों छली जाने पर अपनी बेटी मंदा के लिए संघर्ष भी करती है। कुसुमा अपने पति द्वारा उपेक्षित, परित्यक्ता होकर निराश नहीं होती, बल्कि अपने जेठ से संबंध बनाकर परम्परागत मान्यताओं को ध्वस्त भी करती है।

'अल्मा–कबूतरी' की कदमबाई और अल्मा का संघर्ष आज की प्रगतिशील नारी का संघर्ष है, क्योंकि ये दोनों जिस समाज से हैं उन्हें प्रायः हाशिए पर रखा जाता है। अल्मा का राजनीतिक रूप मायावती जैसी नेत्री की याद दिलाता है। 'चाक' की सारंग हो या 'झूलानट' की शीलो मैत्रेयी के सभी नारी पात्रों का संघर्ष महत्वपूर्ण है। यह अलग बात है कि उनके अन्य उपन्यासों के नारी पात्रों की तुलना में 'कही ईसुरी फाग' की रज्जो कहीं ज्यादा क्रांतिकारी नजर आती है।

'कही ईसुरी फाग' में मैत्रेयी ने 'रज्जो– ईसुरी' की कथा को लोककथा से लिया है। इस लोककथा के माध्यम से उन्होंने उस सामंती समाज को दिखाया है जहाँ स्त्रियाँ हर तरह से शोषित थीं। हालाँकि आज इतने वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं,

इतनी उपलब्धियाँ आई, नाना प्रकार के परिवर्तन हुए; पर स्त्रियों की स्थिति आज भी वैसी ही है। रज्जो का चरित्र इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वह केवल परिवार और समाज से संघर्ष तथा विद्रोह ही नहीं करती, बल्कि इस देश के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर करती है। मैत्रेयी 'कही ईसुरी फाग' में लोककथा के आधार पर स्त्री मुक्ति का जो विकल्प देती हैं, वह इसे उनके अन्य उपन्यासों से विशिष्ट बनाता है।

स्त्री जीवन के अनेक परतों वाले यथार्थ को 'कही ईसुरी फाग' जिस सामाजिक और ऐतिहासिक फलक पर उठाता है, उसका सांस्कृतिक भूगोल बुंदेलखंड का लोकजीवन है। असल में स्त्री को अब तक जितना जाना और समझा गया है। यह उपन्यास उससे आगे की कथा है। इस कथा में वे पारिवारिक रिश्ते भी उघड़ते और नंगे होते नजर आते हैं, जिसे हमारा समाज सुरक्षा के दायित्व सौंपता है। अनेक परतों वाली स्त्री को उसकी संभावनाओं के साथ चित्रित करता यह उपन्यास अवैध लोक का ही जयगान नहीं करता, बल्कि उन सारी स्त्रियों का मुक्ति अभियान भी है। यानी इसमें स्त्री संघर्ष गाथा भी है।

इस उपन्यास में कई ऐसे स्त्री चरित्र हैं जो विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हैं। ये स्त्रियाँ या तो समाज या परिवार की सताई हैं या प्रेम की मारी हैं। ऐसे चरित्रों में ईसुरी–रजऊ की कथा ढूंढ़ने वाली ऋतु है जो बुंदेलखंड में घूम–घूमकर ईसुरी और रजऊ की कहानी को एक सूत्र में पिरोती है। ऋतु को रजऊ और ईसुरी पर शोध करने के दौरान कई टिप्पणियों, कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अंततः वह शोध पूरा कर लेती है, मगर विडम्बना देखिए उसका शोध प्रबंध हिन्दी विभाग द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है। ऋतु माधव नामक एक युवक से प्रेम करती है (जो ईसुरी–रजऊ की कहानी ढूँढ़ने में उसके साथ रहता है), लेकिन बाद में पारिवारिक दबावों की वजह से वह ऋतु को छोड़कर चला जाता है। इस तरह ऋतु दोनों तरफ से अस्वीकृत कर दी जाती है। अगर मैत्रेयी ऋतु के चरित्र का विकास करती तो यह ज्यादा उपन्यास प्रभावशाली बन सकता था।

सरस्वती देवी का ऐसा चरित्र शायद बुंदेलखंडवासी को पसंद न आए, पर जिस रूप में मैत्रेयी ने सरस्वती देवी को दिखाया है वह सामंती ही नहीं, आज के

समाज पर भी करारा तमाचा है। सरस्वती देवी उस समाज से है जहाँ स्त्रियों को फाग सुनने पर भी सजा दी जाती है। ऐसे में वह बुंदेलखंड में जगह–जगह घूमकर फाग मंडली बनाती है। यह इस समाज को चुनौती है। पारिवारिक एवं सामाजिक प्रताड़नाओं के बावजूद सरस्वती देवी का हौसला कम नहीं होता है। वह अपने पथ पर आगे बढ़ती ही जाती है।

मीरा सिंह का चरित्र भी कम वजनदार नहीं है। वह भी पारिवारिक प्रताड़ना की वजह से 'मीरा बहू' से 'मीरा सिंह' बनने पर मजबूर हो जाती है। गंगिया और करिश्मा बेड़नी व आबादी और अनवरी बेगम का संघर्ष भी सामंती समाज को मुँह चिढ़ाने वाला संघर्ष है।

कहना न होगा कि मैत्रेयी ने 'कही ईसुरी फाग' में नारी जीवन के जिन विविध पक्षों पर बात की है, वे आज के और उस समय के समाज में स्त्रियों की दशा को दर्शाते हैं। साथ ही रजऊ के विद्रोही रूप को देखकर स्वतंत्रता सेनानी लक्ष्मीबाई की याद आती है। आज हर घर में ऐसी ही लक्ष्मीबाई की जरूरत है जो इन सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर विकास की संभावना स्वयं तलाश करे।

संदर्भ–ग्रंथ

1. 'कस्तूरी कुंडल बसै' – पृष्ठ–132–133
2. 'शृंखला की कड़ियाँ'– महादेवी वर्मा– लोकभारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1 द्वारा प्रकाशित, तृतीय लोक भारती संस्करण–2001, पृष्ठ–72
3. 'चिन्हार' (भूमिका–हिमाशु जोशी), पृष्ठ–7
4. 'कस्तूरी कुंडल बसै' – पृष्ठ–17
5. 'खुली खिड़कियाँ' (लेख– नकटौरे का अंत), पृष्ठ–68
6. 'खुली खिड़कियाँ' (लेख–स्त्री की धार्मिक यात्रा), पृष्ठ–19
7. 'कस्तूरी कुंडल बसै' – पृष्ठ–9
8. वही, पृष्ठ–104
9. 'इदन्नमम'– पृष्ठ–289
10. 'बेतवा बहती रही'–पृष्ठ–25
11. 'एक और आकाश की खोज में'– प्रभा खेतान– अप्रस्तुत प्रकाशन, ग्रीक चर्च रोड, कलकत्ता, प्रथम संस्करण–1985, पृष्ठ–7
12. 'छिन्नमस्ता'– प्रभा खेतान– सरस्वती बिहार, दिल्ली, संस्करण–1993, पृष्ठ–220
13. वही, पृष्ठ–152
14. 'खुली खिड़कियाँ'– पृष्ठ–42
15. 'इदन्नमम' –पृष्ठ–100
16. 'बेतवा बहती रही'–पृष्ठ–32
17. 'इदन्नमम' –पृष्ठ–157
18. वही, पृष्ठ–292
19. 'शृंखला की कड़ियाँ' पृष्ठ–150
20. 'कस्तूरी कुंडल बसै', पृष्ठ–72
21. 'नारीवाद क्या है'–कमला भसीन पृष्ठ–20
22. 'एक और आकाश की खोज में'– प्रभा खेतान–पृष्ठ–7

दूसरा–अध्याय

'कही ईसुरी फाग' और नारी जीवन के विविध पक्ष

1. देह धरे को दंड
2. मुक्ति की राह

स्त्रियों को बचपन से सिखाया जाता है कि उनका आदर्श चरित्र पुरुषों जैसा आत्मनिर्भर और आत्मसंयमी नहीं, बल्कि दूसरों के प्रति समर्पित होने वाला, दूसरों पर निर्भर रहने वाला होना चाहिए। सारी नैतिकता, सारे आदर्श उन्हें यही सिखाते हैं कि दूसरों के लिए जीना, दूसरों के प्रेम में अपनी जगह बनाना और स्वयं को पूरी तरह नकार देना ही उनका परम कर्त्तव्य है। मतलब समाज में स्त्री की अपनी कोई पहचान ही नहीं होती। बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में बेटे के नाम से स्त्री पहचानी जाती है। यही कारण है कि स्त्री चाहकर भी अपने आपको पुरुष प्रदत्त पहचान से मुक्त नहीं कर पाती। दरअसल यह पुरुषों द्वारा संचालित एक ऐसी व्यवस्था और प्रक्रिया है जिसके तहत प्रारंभ से ही पुरुष स्त्रियों को एक वस्तु समझते रहे हैं तथा जरूरत के हिसाब से उनका उपभोग करते रहे हैं। स्त्रियों का दुर्भाग्य यह है कि परिवार अथवा समाज में जब कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेने का समय आता है तब वे चाहे कितनी भी महत्वपूर्ण स्थिति में क्यों न हों अक्सर उनकी उपेक्षा की जाती है। पुरुषवादी समाज की यह कोशिश होती है कि उसकी उपस्थिति को नकारते हुए उसे तथा उसके विचारों को हाशिए पर डाल दिया जाए।

मेरी वॉल्सटन क्राफ्ट का मानना है कि पुरुषों की इस पारंपरिक भाषा और सोच ने स्त्री समाज को इस तरह ग्रसित कर रखा है कि चेतना संपन्न स्त्रियाँ भी कुंठित या भयग्रस्त जीवन व्यतीत करती हैं। मेरी क्राफ्ट इसका पूरा दोष "नागरिक शासन के उस ढाँचे को देती हैं जो स्त्री समझदारी को परिष्कृत करने से रोकने के मार्ग में अजेय बाधाएँ उपस्थित करता है।"[1] इसी का परिणाम होता है कि अन्न व वस्तु प्राप्ति के बदले यह अपने स्वास्थ्य, मुक्ति और सदाचार के लिए पुरुषों के लिए अर्पित कर देती है। जब तक इस सत्ता द्वारा संचालित नियमों का पालन करती है, अपने अधिकारों के लिए आवाज नहीं उठाती, सिर्फ तभी तक सम्मानीय होती है। जिस दिन वह इस जीवन से अलग जीवन जीने की कोशिश करेगी, तिरस्कृत जीवन ही उसकी नियति होगा। इसलिए मेरी क्राफ्ट स्त्री द्वारा पुरुष पर आधिपत्य स्थापित करने की नहीं, बल्कि स्वयं अपने ऊपर आधिपत्य स्थापित करने की पक्षधर थीं। "लड़कियों में गहरे पैठे भय पोषित और शायद पैदा करने की बजाय, यदि उसी रूप

में समझा गया होता, जैसा कि लड़कों में भीरुता को, तब स्त्री को हम जल्द ही अधिक महत्वपूर्ण रूप में देख सकते थे... तब वह पुरुष जीवन पथ पर स्मित हास्य बिखेरने वाले सौंदर्य प्रसून नहीं बल्कि समाज की अपेक्षाकृत अधिक सम्मानीया सदस्या होंगी और जीवन के महत्वपूर्ण कर्त्तव्यों का निर्वाह अपनी निजी तर्क बुद्धि के प्रकाश में करेंगी।"[2]

असल में पूरी दुनिया में स्त्री शब्द को लेकर दो तरह की धारणाएँ प्रचलित रही हैं– एक 'श्रद्धा' रूप में, दूसरी 'वस्तु' रूप में। पारंपरिक समाज में स्त्रियाँ 'श्रद्धा' के रूप में मान्य थीं। मुख्य धारा में निर्णायक स्थिति में वे कभी नहीं रहीं। आधुनिक समाज में तो उनकी स्थिति और खराब होती गई है। पूँजीवाद के विकास और बाजार के वर्चस्व के कारण धीरे–धीरे वे वस्तु में तब्दील होती गई। असल में स्त्री के विषय में पुरुषों की नियत कभी साफ नहीं रही है। वे 'इस' या 'उस' रूप में स्त्री की लगाम अपने हाथ में रखने के सदा आकांक्षी रहे हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री कदम–कदम पर अत्याचार और भेदभाव सहती, झेलती रही है। वह सदैव नेपथ्य से ही अलाप करती रही है। जीवन के रंगमंच पर उसको कभी स्थान नहीं मिला है। वह आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में लैंगिक उत्पीड़न का शिकार बनती रही है।

देह धरे को दंड

कोख से लेकर कब्र तक कहाँ है सुरक्षित स्त्री। मादा होने की सजा है कि जन्म के पहले गर्भ में ही भ्रूण हत्या कर दी जाती है। अगर गर्भ से बच भी गई तो जन्म लेते ही गला दबाकर या मुँह में बालू ठूंसकर या दूध में डुबोकर या फिर अफीम चटाकर उस नवजात शिशु की हत्या कर दी जाती है। यह हर युग में, हर दौर में होता आया है। वक्त बदला, लेकिन लड़कियों के प्रति हत्यारी, शोषित मानसिकता नहीं बदली।

चलो गर्भ से बचकर वह कुछ बड़ी हुई नहीं कि चारों ओर दैहिक मार झेलने के लिए तैयार हो गई। इस सच्चाई को मैत्रेयी ने अपने उपन्यास 'कही ईसुरी फाग' में उजागर किया है। एक औरत पर कोड़े बरसाते रहो और वह उफ! तक भी न करे, तो ठीक है। आज के समाज और उस सामंती समाज में कोई फर्क नहीं रहा है। रज्जो की सास ने छिपकर फाग क्या सुन लिया, उसकी सजा इतनी क्रूर होगी उसे पता न था। रज्जो की सास का शरीर जैसे कोड़े खाने के लिए ही बना हो। पति ने आव देखा न ताव, बस तड़ातड़ कोड़े बरसाने शुरू कर दिए। जब उससे थक गया तो उसकी हथेली पर खटिया का पाया रखकर बैठ गया। यही परम्परा उस खानदान में बाद तक चलती रही और यही सजा रज्जो को मिली फाग सुनने पर। प्रताप "जंगली बिल्ले की तरह रज्जो की ओर झपटा और उससे इस तरह टकराया कि अनाज के भरे बर्तन फूटने लगे। पीतल की नाँद झनझना उठी। वह पीछे की ओर गिरी। चूड़ियों भरी कलाई पर फुर्ती से खाट का पाया रख दिया और उस पर प्रताप खुद बैठ गया। दादा और पिता ने ऐसी ही सजा तो औरतों के लिए कारगर बताई है।"[3]

एक परिवार जो स्त्रियों की सुरक्षा की गारंटी लेता है, क्या वहाँ वाकई स्त्री सुरक्षित है? रज्जो के माध्यम से मैत्रेयी ने पारिवारिक रिश्ते के जिस खोखले सुरक्षा गारंटी को उधेड़कर नंगा किया है वह दिल दहला देने वाला है। यह कैसी विडम्बना है कि पुरुष जिस देह पर कोड़े बरसाता है, उसी देह को भोगने के लिए आतुर रहता है। रज्जो का पति, रज्जो की देह को मात्र भोगने और पीटने वाली वस्तु ही समझता है। "उसके चेहरे पर उत्तेजना और वासना का उल्लास अपनी रूढ़ि के साथ लिपटे हुए थे... संभोग–सम्मेलन के समय जैसे प्यार किया जाता है, किया। एकाकार, एक रूप और एकाग्र चित्त का मनोरंजन, जिसके लिए पुरुष दिन और रात, उजाला और अंधेरा यहाँ तक कि स्त्री और स्त्री का भेद नहीं कर पाता। रज्जो फिर अपनी या दूसरी कैसे लगती? वह केवल प्रताप की तृप्ति का साधन थी, खूबसूरत मादा का अनुपम रूप!"[4]

हमारे समाज में औरतों के लिए जेठ से बोलना–बतियाना निषेध है। चुप रह जाना बड़ों के लिए आदर्श की निशानी माना जाता है और हम जिनका आदर करते हैं, उनके किए धरे पर शक–शुबहा नहीं करना चाहते। परन्तु रज्जो का जेठ क्या इस लायक है? रज्जो अच्छी तरह जानती है कि जेठ रामदास की नियति में खोट है। "बाई, सुन लो और समझ लो। रामदास दाऊ जू व्यौहार नहीं करते, वे करोबार किया करते हैं। समझ रही हो कि उनका मकसद क्या है? यही कि प्रताप मतारी के बुढ़ापे का बोझ ढोना है तो उसकी ज्वान जोरू को काए छोड़ा जाए।"[5]

प्रताप के छोड़ देने पर रज्जो की सास को यह अहसास है कि औरत अकेली नहीं रह सकती। इसलिए वह रज्जो को दूसरा मर्द कर लेने के लिए कहती है। वह रामदास से विवाह के लिए दबाव डालती है, लेकिन रज्जो रामदास की मनसा समझकर उससे विवाह करने से इनकार कर देती है। रामदास रज्जो से विवाह कर प्रताप की जायदाद अपने बेटे के नाम करवाना चाहता था, पर रज्जो उसके किए पर पानी फेर देती है। इनकार से झल्लाया रामदास रज्जो को तरह–तरह से प्रताड़ित करता है। अंत में वह उसे मरवाने की कोशिश करता है। "रज्जो के 'इनकार' को धमकी दी है कि वह इस बिगड़ी घोड़ी को जान से खत्म कर देगा। इस बदकार औरत का दूसरा कोई इलाज नहीं।"[6]

अकेली रज्जो के लिए पूरा गाँव भी दुश्मन हो गया है। रामदास से शादी के लिए रज्जो का भाई भी सहमत हो गया। रज्जो ने सोचा था कि उसका भाई लछमन उसकी पीड़ा को समझेगा, पर वह उसी पुरुष मानसिकता का निकला। शादी की सहमति पर तर्क देता हुआ लछमन कहता है कि "वह भी निपूता ही है।"[7] रज्जो भड़क उठी। उसने भी गुस्से में कह दिया "तुम अपनी जनी को पहुँचा दो, लड़का जन देगी। खेती भी तुम्हारी होगी।"[8] रज्जो का यह कहना था कि लछमन ने "आव देखा न ताव, फड़कते हुए होठ और तनी नाक की मुद्रा में पूरी ताकत लगाकर रज्जो के गाल पर चाँटा मारा दिया।"[9] रज्जो का सारा भ्रम टूट गया। वह यह सोचकर रखी थी कि– "भइया हो, भइया काए के लाने होत हैं? बहन की आबरू की रच्छ्या के लाने ही न।"[10] क्या भाई की कलाई पर बहन इसलिए राखी बाँधती है कि वक्त

आने पर भाई भी उसका साथ न दे? तब तो यह रक्षाबंधन का त्योहार झूठा साबित हो गया।

इस पितृसत्तात्मक समाज में परिवार को सबसे ऊँचा दर्जा दिया जाता है। इसी परिवार की वंश परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए विवाह को आवश्यक माना गया है। क्या कभी किसी ने यह जानने की कोशिश की, कि इस परिवार को बचाने के लिए एक स्त्री को किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक स्त्री के अलग–अलग कई दुःख होंगे, लेकिन स्त्री का स्वास्थ्य कैसा है, क्या इस पर किसी ने ध्यान दिया है? बार–बार की संतानोत्पत्ति से उसकी देह पर क्या बीतती होगी, इस पर किसी ने सोचा है? पुरुष भला क्यों सोचने लगे! उन्हें आखिर क्या लेना–देना है इससे। उन्हें तो बस उस परिवार को बचाने की चिंता है, जहां के सर्वे–सर्वा वे स्वयं हैं। आखिर स्त्री भी क्या करेगी, तंग आकर आत्महत्या कर लेगी या फिर मुक्ति की तलाश में घर की दहलीज लांघकर चल पड़ेगी। इसलिए जब–जब स्त्रियों को मौका मिलता है, वे अपने ऊपर लादे गए गृहस्थी के लबादे को उतार कर फेंकने लगती हैं। ये स्त्रियाँ आजादी चाहती हैं, सिर्फ पति या इस पुरुष व्यवस्था से नहीं, बल्कि हर किस्म के बंधन से।

लेकिन विडम्बना देखिए मर्दों की इस दुनिया में स्त्री की आजादी का मतलब उसका पतित हो जाना, कुलटा हो जाना है, क्योंकि हमारा यह समाज स्त्री के केवल आदर्श रूप को ही स्वीकार कर पाता है। जब तक एक स्त्री घर में रहती है, समय पर खाना बनाती है, बच्चे पालती है, रात में पति को संतुष्ट करती है, सास–ससुर की सेवा करती है तब तक वह आदर्श स्त्री कही जाती है और ज्यों ही वह इस आदर्श चिह्न के घेरे से बाहर निकलने की कोशिश करती है, दूसरी तरह की औरत मानी जाती है। मतलब इन्हें आजाद स्त्री की कोटि में रखा जाता है। आजाद मतलब कुलटा स्त्री। यानी ये साझी सम्पत्ति हैं, जिन्हें कॉलगर्ल या वेश्या कहा जाता है। भले पुरुष पचास औरतों के साथ संबंध रखे, उन्हें बुरा कोई नहीं कहता, पर एक स्त्री, एक प्रेम करके भी चरित्रहीन कही जाती है।

क्या विवाह इसलिए स्त्रियाँ करती हैं कि पति की मार को आजीवन झेलती रहें? वक्त–बे–वक्त उसके शरीर को कुचला–मसला जाए? और वे मुँह से उफ! तक न करें। यह कैसी बिडम्बना है कि "काम घूंघट में करो और कुछ बिगरे–बिखरे नहीं। जिस ब्याह से लड़की को अंधा होना हो, उस ब्याह की लालसा कौन करेगी?"[11]

विवाह एक आवश्यक संस्था है। यह हर लड़की के लिए भी आवश्यक माना गया है। पर वह बचपन से ही पुरुष के अधीन रहती है। "बचपन से ही बाप–भाइयों के साये में रहना सीखा है। माँ–काकियों को घर के पुरुषों के लिए पानी भरते, रसोई करते, उनके कपड़े धोते, समझो कि रात–दिन उनकी सेवा में लीन देखा है, जैसे उनकी जिंदगी का मकसद घर के मर्दों की सुख–सुविधा का ध्यान और सेवा का अरमान हो।"[12]

गृहस्थी की गाड़ी स्त्री–पुरुष (पति–पत्नी) के विश्वास, प्यार, समझदारी पर ही चल सकती है, लेकिन रज्जो की गृहस्थी न चल सकी। एक तो प्रताप घर से बाहर पढ़ने चला गया, दूसरा रज्जो को ईसुरी से प्रेम हो गया। प्रेम करने की इजाजत हमारा समाज कभी नहीं देगा। वह भी एक शादीशुदा स्त्री को! यदि प्रेम कर लिया तो प्रताप के कोप का भाजन बनना पड़ेगा। "मुँह से गालियाँ फूट पड़ी, अब तक खाए–पचाए की उल्टियाँ करने लगा। आँगन की हवा में बदबू सी भर गई– कुतिया, हम चले गए तो तेरे लिए हर दिन क्वार का दिन हो गया... तमाम पाल लिए रंडी ने।"[13] फिर दनादन रुई की तरह धुनाई कर दी प्रताप ने रज्जो की। क्या एक स्त्री को प्रेम करने का अधिकार नहीं? मर्द चाहे कितनी औरतों से प्रेम करे कोई कुछ नहीं कहता। ईसुरी महराज भी उन्हीं पुरुषों में से थे, जिनकी एक बीबी और एक बच्चा भी था और जो अपनी औरत के पेट में बच्चा डालकर यहाँ नई नवेली को फंसा रहे थे।

क्या रज्जो के पास दिल नहीं, क्या वह किसी पुरुष को प्यार नहीं कर सकती। यहाँ मैत्रेयी ने रज्जो को विवाह के बाद ईसुरी से प्रेम करते हुए दिखाकर प्रेम को शादी से मुक्त रखने की वकालत की है। ऐसी छूट आज के समाज के लिए एक चुनौती है– पति के रहते दूसरे पुरुष से प्रेम करना। यहाँ 'पहेली' फिल्म से इसका संबंध जोड़ सकते हैं, जिसमें पति नौकरी के उद्देश्य से बाहर गया है और पत्नी एक

दूसरे पुरुष से प्रेम करती है। सिर्फ प्रेम ही नहीं करती, उसके बच्चे की माँ भी बनती है। तसलीमा नसरीन का उपन्यास 'चार कन्या' में झुमुर अपने पति हारुन के रहते पड़ोसी अफजल से प्रेम करती है और उसके बच्चे को अपने गर्भ में पालती है "मैंने तय किया कि दस से सोलह तारीख तक अफजल के वीर्य से वीर्यवान रहूँगी... मेरी बच्चेदानी में गैर मर्द का क्लेद है और हारुन अपने बनाए सतीत्व के पिजड़े में मुझे डालकर उसकी सुगंध लेता है।"[14] रज्जो के मन में यही मातृत्व भाव है, जिससे अब तक वह वंचित है। रज्जो अपनी सास से कहती है "तीन वर्ष ब्याह को हो गई, अब तक बच्चा हो लेते।"[15]

देह व्यापार या वेश्यावृत्ति सदियों पुराना धंधा है। आज आर्थिक दबावों से टूटी महिलाएँ इस पेशे में आती हैं। वेश्या नाम पर नाक–भौं सिकोड़ने वाला हमारा समाज ही आज इसे पाल रहा है। इस तरह देखा जाए तो इस समाज में नैतिकता के दोहरे मापदंड कायम हैं। वेश्यावृत्ति या देह व्यापार सामाजिक रूप से अस्वीकृत यौनाचार है, इसलिए जब इसे गलत और अनैतिक माना जाता है तो यह इस समाज में उपजती ही क्यों है? 'इदन्नमम' के अभिलाख सिंह और कैलाश मास्टर जैसे लोग रहेंगे तो क्या होगा? मस्साब की बेटी और चीफ साहब की भतीजी धंधा या देह व्यापार नहीं करेगी तो क्या करेगी? यही लोग इन्हें देह व्यापार के लिए मजबूर करते हैं।

देह व्यापार का मुद्दा किसी भी समाज में स्त्रियों की स्थिति के सवाल से सीधा जुड़ा हुआ है। जो समाज देह व्यापार की इजाजत देता है या सब कुछ जानते हुए अनदेखा कर देता है, वह प्रगतिशील होने का दावा नहीं कर सकता। देह व्यापार चाहे खुले तौर पर हो, चाहे ढके–छिपे; इससे 'सामाजिक नैतिकता' का खोखलापन ही उजागर होता है। देह व्यापार का विस्तार इस ओर संकेत करता है कि पुरुष पत्नी के प्रति सेक्स संबंधों से खुश नहीं है या वह पत्नी को महत्व नहीं देता है। स्त्रियों की खरीद–फरोख्त भी इस देह व्यापार के धंधे से ही जुड़ी हुई है।

पत्नी और वेश्या दोनों पुरुष के साथ सोती हैं, लेकिन दोनों में फर्क है। पत्नी पति की गुलाम है, पति जो कहेगा उसे करना पड़ेगा, वेश्या स्वतंत्र है, अपने मन की मालिक है। वह पुरुषों को गुलाम बनाकर रखती है। पत्नी अपनी पूरी जिंदगी बेचती

है जबकि वेश्या कुछ घड़िया, कुछ दिन। राय प्रवीण कुछ ऐसे ही स्त्री जीवन के पहलू का पर्दाफाश करती है– "वेश्या किसी की पत्नी नहीं होती राजन, सो किसी की गुलाम भी नहीं होती। वह अपनी मर्जी की मालिक, आजाद स्त्री होती है। इस धरती की सबसे ज्यादा आजाद औरत। मेरा हक आप नहीं छीन सकते, क्योंकि मैंने अपनी मुद्राओं और सुख–सुविधाओं के बदले कुछ पल, कुछ घड़ियाँ या कुछ दिन आपको दिए हैं, जिंदगी नहीं बेची, जैसे की एक पत्नी बेचती है, जिसे आप धर्म पत्नी कहते हैं।"[16]

असल में राय प्रवीण के द्वारा मैत्रेयी आज की नारी के लिए यौन चुनाव में छूट की माँग करती हैं। आज स्त्रियों को भी यौनिकता की छूट मिलनी चाहिए। उसे अपने अनुसार यौन संबंध बनाने की इजाजत होनी चाहिए। 'चाक' उपन्यास में मैत्रेयी इसी महत्वपूर्ण सवाल को उठाती हैं कि क्या स्त्री–पुरुष रिश्तों में इतनी स्वाधीनता नहीं होनी चाहिए कि विवाह के बाहर भी संबंध बन जाए तो इसकी उदार छूट हो? इसके पक्ष में दो तर्क दिए जा सकते हैं। पहला यह कि पूर्व विवाह को विघटित कर दिया जाना चाहिए और नए संबंध को उसकी परिणति तक ले जाना चाहिए, दूसरा तर्क यह है कि विवाह को बचाना है तब बच्चे को सिर्फ उसकी माँ के नाम से जाना जाए। 'चाक' का श्रीधर डायरी में लिखता है "यही प्रताड़ना देखकर तुम्हारे ही बीच से कोई मंझा उठेगी सारंग, जो अपनी मर्जी से अपना बच्चा पैदा करेगी। भले बालक हींसबिरे (जंगल) में जन्मे। उसकी कोख का फैसला करने वाला कोई राजा होगा न मालिक और न कोई देवता। जल की तरह जन्म लेने वाला प्यारा सा बच्चा सिर्फ अपनी माँ को पहचानेगा, किसी राजा पिरथम को नहीं।"[17]

जिस यौन संसर्ग को बड़ा सहज माना गया है उसी के मूल में हिंसा, द्वेष और व्यभिचार भी निहित है। इसी संदर्भ में यौन जनित अपराध की ग्रंथि काम करती है। जवाहर सिंह जैसे व्यक्ति भी ऐसे यौन जनित ग्रंथि से ग्रस्त हैं। अपनी सोलह वर्षीय पत्नी के साथ जिस निर्ममता से वह संभोग करता है, वह किसी भी स्त्री के दिल को जख्मी कर देगा। हर पत्नी पति के साथ संभोग करने से डरेगी। जवाहर सिंह ने इतनी निर्दयता बरती कि उसकी पत्नी की उसी कामशय्या पर मृत्यु हो गई। "जिसने

अपने सोलह साल की पत्नी से संभोग करते हुए इतनी निर्दयता बरती कि वह मर ही गई, अपने रिवाजों के हिसाब से वह लड़की मरकर स्वर्ग गई होगी।''[18] यह कैसी विडम्बना है कि सेक्स में पत्नी की मर्जी तक नहीं पूछी जाती। क्या सेक्स करते समय पत्नी की मर्जी जरूरी नहीं? बलपूर्वक यौन संसर्ग, वह चाहे पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ ही क्यों न किया जाए, बलात्कार ही कहलाएगा।

असल में पुरुष सत्ता द्वारा जो आतंक स्त्री के मानस में बैठा दिया गया है, उस कारण भी स्त्री डरी, घबराई, भयभीत रहती है। इसी भय को दूर करने के लिए तो स्त्रियाँ यौनिकता में चुनाव की माँग कर रही हैं ताकि माँ बनने की विवशता से मुक्त हो सकें। माँ बनने का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि स्त्री को हमेशा पुरुष के साथ रहना पड़े। कुंआरी स्त्री भी माँ बनने की इच्छा रख सकती है, जैसे अदाकारा नीना गुप्ता ने बिन ब्याही माँ बनने का बीड़ा उठाया या फिर 'इदन्नमम' की कुसुमा ने। कुसुमा ने अपनी इच्छा से बिना ब्याह किए अपने जेठ से संबंध बनाकर संतानोत्पत्ति की। इसी स्वतंत्रता के लिए आज समलैंगिक संबंध की भी माँग की जा रही है। तर्क यह है कि इससे यौन हिंसा से बचा जा सकता है। वैसे भी समलैंगिक संबंधों में प्रेम की प्रधानता और पर–उत्पीड़न की परम्परा से मुक्ति मिलेगी। वरना वैसे ही औरतें पुरुषों की हवस का शिकार होती रहेंगी, जैसे 'इदन्नमम' की मंदा या सुगना। मंदा के साथ हुए बलात्कार की न तो कोई पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाई जाती है और न बाद के जीवन में यह हादसा मंदा को मानसिक रूप से परेशान करता है। इस दृष्टि से मंदा 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्ती, 'छिन्नमस्ता' की प्रिया से भिन्न है। उसके चेतन–अवचेतन में कहीं कोई अपराधबोध या गुस्सा या प्रतिशोध की भावना नहीं है, क्योंकि कुसुमा भाभी ने चुप रहने के लिए कहा था ''जो हुआ, उसे भूल जाना। डर मत मानना कभी। जिंदगानी में, इतनी बड़ी जिंदगी में अच्छा–बुरा घट जाता है बिटिया, उसके कारण मन में गांठ लगाने से क्या फायदा।''[19] ऐसी ही चुप्पी साधने के लिए प्रिया के लिए उसकी दाई माँ कहती है। शायद मंदा के चुप रहने का ही परिणाम था कि सुगना के साथ बलात्कार हुआ– 'जिसकी देह पड़ी है आंगन में! कीचड़ मिट्टी और पानी में लिथड़ी–सनी देह! फफोलों भरी देह! जले बालों और

विकृत चेहरे वाली देह!' आज समाज में लगातार बढ़ते बलात्कार को देखते हुए कुसुमा भाभी की यह सीख बेहद परेशान और हैरान करती है। कुसुमा ने जिस बदनामी के डर से चुप रहने के लिए कहा था, क्या उस बदनामी से वह मंदा को बचा पायी? कुसुमा के लाख कहने पर कि मंदा अभी 'कुंआरी कन्या' है, क्या किसी ने विश्वास किया? गाँव की सारी औरतें कहती हैं "जे मोंड़ी तनक उमर में बीस घटिया नाखी है, गाँव–गाँव रही–बसी है, भला बची होगी अच्छत कुँआरी? हमें तो बता गए हैं बिरगवाँ के कैलाश मास्टर कि सती–सावित्री नहीं है वा सोनपुरा की मोंड़ी"[20]

फूलन देवी और भवंरी देवी से लेकर मिथिला तक, एकल बलात्कार से लेकर सामूहिक बलात्कार की घटनाओं से कौन परिचित नहीं होगा। राजस्थान में भवंरी देवी के साथ उसके ही गाँव के लोगों ने बलात्कार किया। भवंरी का कसूर इतना था कि उसने प्रभावशाली लोगों द्वारा किए जाने वाले बाल–विवाह के विरुद्ध पुलिस को सूचना दी। भवंरी के साथ बलात्कार का उद्देश्य उसे सबक सिखाना था। सत्ता और व्यवस्था पर विराजमान ऐसे लोगों ने ही भवंरी को न्याय नहीं दिलाया। भवंरी को न पुलिस से न्याय मिला और न सरकार ने उसकी सहायता की। उलटे भवंरी के साथ पुलिस ने वैसा ही व्यवहार किया, जैसे 'पुरुष पुलिस' करती है। ऐसे समय में भवंरी की मदद स्त्री संगठनकर्ताओं ने की। इन्होंने भवंरी के संघर्ष को इस देश की उन स्त्रियों के संघर्ष का पर्याय बना दिया, जो अन्याय और शोषण के विरुद्ध जन चेतना के कार्य में लगी हुई हैं। महाराष्ट्र में पुलिसकर्मियों ने मथुरा नामक युवती के साथ बलात्कार किया, परन्तु पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में आरोपियों को न्यायालय ने मुक्त कर दिया, लेकिन स्त्री–संगठन की कार्यकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर मथुरा को न्याय दिलाया।

ऐसे ही सामूहिक बलात्कार की घटना का जिक्र तसलीमा नसरीन अपने उपन्यास 'चार कन्या' में करती हैं। शीला मंसूर नामक एक युवक से प्रेम करती है, लेकिन वह मंसूर मौका देखकर शीला के साथ बलात्कार करता है। पर विडम्बना देखिए वह अकेला नहीं होता, बल्कि उसके साथ कई लोग होते हैं, जो बारी–बारी से शीला के साथ बलात्कार करते हैं "मेरे सारे सपनों, इच्छाओं व उम्मीदों को

नोंच–खसोटकर, चीर–फाड़कर खून से लथपथ कर मंसूर मेरे शरीर पर चढ़ गया, मैं डर और दर्द से छटपटाने लगी।... मंसूर मेरे शरीर में तेज दर्द भरकर उतर गया।... सूखे चेहरे वाला लड़का चिश्ती वह अंदर आया। मंसूर निकल गया। उसने घुसते ही... तेजी से अपनी शर्ट–पैंट उतार दी।... चिश्ती ने भी बिस्तर पर चढ़कर मंसूर की तरह वैसा ही सबकुछ किया।... चिश्ती के जाने के बाद मुजफ्फर नामक मोटा युवक आया।... उसने मेरे शरीर पर अपना पूरा वजन रख दिया। शरीर अपने–आप दर्द से कराह उठा।... शरीर के निचले हिस्से में अब कोई संवेदना नहीं, सुन्न पड़ गया।''[21] फिर नईम और महमूद ने शीला के साथ बलात्कार किया। बलात्कार का ऐसा अमानवीय और हिंसक रूप किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की आँखों में आँसू ला देगा।

बलात्कार में यौन संसर्ग के साथ–साथ हिंसा भी जुड़ी है। आज जिस तरह से समाज में दिन–दहाड़े लड़कियों, औरतों का बलात्कार किया जा रहा है, उसके पीछे भी यौन कुंठा छिपी हुई है और बलात्कार के बाद उनकी हत्या इसी मानसिकता का द्योतक है। प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता' इस बात को प्रमाणित करता है। इस उपन्यास में प्रिया का बड़ा भाई उसके साथ बलात्कार करता है, जब प्रिया उसकी बात नहीं मानती है तो उसका भाई उसे मारता–पीटता भी है ''प्रिया को नहीं मालूम कि भैया ने यह क्यों किया?... मना करने पर उन्होंने ऐसे जोर थप्पड़ मारा कि...?''[22] दाई माँ भी इस विडम्बना को जानती है और कोसती है ''अरे जालिम, अरे कसाई, अपन सगी बहन को भी नहीं छोड़ा!... अरी मोर बिटिया, नहीं। तोहार क्वारपन खतम हो गईल... कच्ची कली नहीं बिटिया, नाहीं, ई बात किसी से कभी जिन कहियो।''[23] इसी कारण प्रिया को नफरत हो गई पुरुष जाति से, वह कहती है ''मुझे नफरत है इस पुरुष जाति से। नफरत है उससे जो मासूम, छोटी, नादान लड़की को भी नहीं छोड़ता।... जन्म से औरत... असहाय औरत। उसे न पिता छोड़ता है और न भाई! अपनी नारी देह में, स्वयं में क्षत–विक्षत होकर रह जाती है, वह कभी किसी पराए पुरुष को प्यार नहीं कर पाती और न ही सृजन के सबसे सुन्दर रूप किसी और के बीज की रक्षा अपने गर्भ में कर पाती है।... पर क्या समाज स्त्री की रक्षा करता है? क्या पुरुष की कामुक हवस का शिकार होने से मासूम लड़कियाँ बच पाती हैं?''[24]

बदले की भावना और यौन कुंठा का ही परिणाम था कि बिरतिया रज्जूराजा के शरीर का भोग करता है। "बिरतिया को बदले में कुछ नहीं चाहिए, बिट्टी के चूमा लेता है गाल पर। गर्दन पर। होठों पर। और मौका देखकर छाती दबा लेता है।"[25] बिरतिया ऐसा बदला लेने के लिए भी करता है, क्योंकि उसके मन में इस बात की खीझ है कि "मुसाहिब जू हमारी बहुओं को पहली रात ही अपने नीचे बिछाकर मानते हैं।[26] बिरतिया का यह कथन उस सामंती मानसिकता को दर्शाता है जहाँ स्त्रियों को मात्र भोग की वस्तु समझा जाता था। सामंती दृष्टि का इससे भी भयंकर रूप तब सामने आता है, जब सामंत या स्त्री को भोग–विलासिता का साधन मानने वाले वे हर व्यक्ति जो दूसरों की बहुओं को अपनी वासना का शिकार बनाते हैं, स्त्री के प्रति कामुक दृष्टि रखते हैं। 'परती परीकथा' में स्त्रियों के प्रति किए जाने वाले ऐसे व्यवहार एवं डाली जाने वाली ऐसी सामंती दृष्टि को अभिव्यक्ति मिली है–"उस बार डानापोर कैण्ट से कोई फौजी मेहमान आये थे, साहेब के यहाँ छुट्टी मनाने के लिए। हेड ब्वॉय वैरागी ने साहब को बताया– टुराईदास गौना करके नयी बहू ले आया है। तुरंत सिपाहियों को हुक्म हुआ– सूर्जसिंग, बाकरमियाँ दोनों जायेगा। अस्बी ले जायेगा. .. ।"[27]

गंगिया बेड़िनी का दैहिक शोषण देशपत का भतीजा कंझलशाह करता है। बसारी वाली बऊ भी स्त्री जीवन की इस बिडम्बना को जानती है। वह ऋतु को बताती है "बिन्नू जनी की तो न जब कोई जात हती, न अब है, जब गाँव की तमाम जनी सिपाहियों के लिए जाती थीं उनकी जाति गाँव में ही धरी रह जाती है। जहाँ औरतों की खरीद–फरोख्त हो रही है, वहाँ आदमी पूजा धरम निभाकर अपने जात–गोत की चादर जनी को उढ़ा लेता।"[28] असल में बऊ का यह कथन यही बताता है कि जब मर्द पर वासना की चादर चढ़ जाती है तब उसे औरत की न जात दिखती है और न कुछ और। आदित्य की माँ जो एक निचले तबके के किसान की बेटी है, उसे धुबैला का राजा उठवा ले जाता है। यह वह वही लड़की थी जिससे प्रेमानंद सूरे प्यार करता था, जिसकी आँखे विद्रोह करने के कारण फोड़ दी गई थी।

गरीब एवं किसान की बेटी होने के कारण आदित्य की माँ जीवनभर राजा की कुदृष्टि सहती है।

रजऊ–ईसुरी पर शोध करने वाली छात्रा ऋतु का जीवन भी रजऊ जैसा हो जाता है। रजऊ पर शोध करने के कारण ऋतु लोगों की नजर में उपेक्षित है। उसका प्रेमी माधव भी उसके शरीर का भोग करता है और शादी के झूठे वादे करके जीवनभर साथ रहने का वादा करके हमेशा–हमेशा के लिए उसे छोड़कर चला जाता है। रजऊ का प्रेम हो या फिर ऋतु का, दुःख हमेशा स्त्रियों को ही झेलना पड़ता है।

रजऊ और ऋतु के प्रेम में एक अंतर यह है कि जहाँ रजऊ ने कभी ईसुरी को अपने शरीर पर हाथ लगाने नहीं दिया, वहीं ऋतु इससे कहीं आगे है। रजऊ मन से ईसुरी की हो चुकी है, लेकिन तन से वह आज भी प्रताप की ही है पर विडम्बना यह है कि पति को शक है कि उसका संबंध ईसुरी से है। अगर पत्नी सेक्स करने में संकोच करे तो पति की उपेक्षा का शिकार होती है और यदि खुलकर सेक्स करे तब भी पति के उलाहनों का शिकार होती है। प्रताप रजऊ के खुलेपन को देखकर कहता है "ईसुरी की संगति और उसके रास रचाने वाली यह औरत मर्द को खुश करने के नायाब तरीके सीख गई है, जिनसे खुद भी उत्तेजित और आनंदित होती है।"[29]

ऋतु आधुनिक युग की नारी है। उसके लिए प्रेम में देह की उपस्थिति अनैतिक नहीं है। वैसे भी स्त्री–पुरुष के प्रेम संबंध को एक विशिष्ट दोहरी स्थिति का सामना करना पड़ता है। एक ओर यह व्यक्ति की निजी आवश्यकता से जुड़ा रहने के कारण अपनी वैयक्तिकता की माँग करता है तो दूसरी ओर मूल्य के रूप में स्वीकृति होने के कारण वह समाज तथा समाज के नैतिक मान्यताओं से संबंधित रहता है।

यह सच है कि आज किसी भी स्त्री–पुरुष के संबंध में शारीरिक आकर्षण रहता है, फिर चाहे वह माता–पुत्र का संबंध हो या भाई–बहन का। अज्ञेय का उपन्यास 'नदी के द्वीप' में भुवन और रेखा के प्रणय–संबंध में शरीर एक अनिवार्य भूमिका निभाता है। यह प्रेम समाज की परम्परागत नैतिकता से संचालित नहीं है, यह अनैतिक और अस्वीकृत है समाज में। ऋतु–माधव का प्रेम भी कुछ इसी तरह का है, जिसे हमारा समाज कभी स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि बिना विवाह के दोनों

पति–पत्नी की तरह साथ–साथ रहते हैं। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा वशिष्ठ भी शादी से पहले ही अपने होने वाले पति से शारीरिक संबंध बनाती है और गर्भवती हो जाती है। हर्ष की मृत्यु शादी से पहले ही हो जाती है, बावजूद इसके वह बच्चे को जन्म देती है। इस दौरान उसे कई लांछनों, उलाहनों से गुजरना पड़ता है पर वह इन बातों से विचलित नहीं होती। लेकिन ऋतु कहीं–न–कहीं इस रिश्ते से डरती भी है तभी वह माधव से शादी करना चाहती है। वैसे ऋतु के इस डर के पीछे सामाजिक कारण हैं। असल में वैयक्तिक रूप में प्रेम जहाँ एक ओर स्त्री–पुरुष को सुखद, स्थायी एवं अंतरंग संबंध के निर्वाह का अवसर और यौन तृप्ति की सुविधा देता है, वहीं विवाह का संस्थान उस संबंध–निर्वाह पर सामाजिकता की मुहर लगाकर उसे स्त्री–पुरुष से पति–पत्नी बनाकर प्रेम, यौन और प्रजनन की प्रक्रिया की ओर उन्मुख कर देता है। अगर स्त्री और पुरुष दोनों ही शिक्षित हों, जिनके विचार और जीवन का लक्ष्य एक हो, जिनके बीच बेहतरीन किस्म की समानता, समझदारी हो, तब उनके बीच सुखमय जीवन की कल्पना की जा सकती है, लेकिन आज विवाह का सामंती आदर्श, जिसमें विवाह देह और आत्मा का जन्म–जन्मांतर का बंधन माना जाता था, अपने अन्यायपूर्ण और अवनतिकारक प्रभाव के कारण सड़ गया है। स्त्री–पुरुष अगर जीवन में एक साथ रहने का, विवाह संस्था के तहत या उससे बाहर निर्णय लेने का साहस करते हैं तो, यह उनके आपसी सहयोग और समानता पर ही टिका होता है। लेकिन यदि अधीनस्थ विवाह का पुराना मॉडल ही बरकरार रहा तो कोई आश्चर्य नहीं कि स्वतंत्र स्त्रियाँ विवाह संस्था की स्थिति को मानने से इनकार कर दें। शायद इसी कारण माधव के चले जाने के बाद भी ऋतु विचलित नहीं होती।

संदेह का विष परिवार की सुख–शांति को विषाक्त बना देता है। भले ही वह पति के हृदय में उपजा हो या पत्नी के हृदय में। ऋतु की माँ विवाह से पूर्व विकल से प्रेम कर बैठती है। ऋतु की माँ शादी के बाद भी विकल की याद में तड़पा करती थी। ऋतु के पिता इसी शक से ऋतु को अपनी औलाद मानने की बजाय विकल की औलाद मानता है और गर्भवती विमलेश (ऋतु की माँ) को घर से निकाल देता है। ऋतु कहती है "मुझे मेरे जायज पिता ने विकल की औलाद समझा और गर्भवती माँ

को घर से निकाल दिया''[30] ऐसे में विमलेश क्या करती। समाज भी उसे बदचलन ही मानता, क्योंकि बदचलनी का 'सबूत' उसके शरीर पर टंगा था।

यह केवल विमलेश के साथ नहीं हुआ। यह तो युग–युग से चलता आ रहा है। सीता जैसी पतिव्रता पर भी जब शक के बादल मंडराए तो उन्हें भी घर से निकाल दिया गया। अपनी पवित्रता के लिए उन्हें अग्नि–परीक्षा से गुजरना पड़ा।

इसमें शक नहीं कि औरत वस्तुतः देह होने के कारण ही हर जगह शोषित–प्रताड़ित है, जिस औरत के गर्भ से पुरुष का जन्म हुआ है उसने औरत को दिया ही क्या है सिवाय सजा के–

'औरत ने जनम दिया मरदों को,
मर्दों ने उसे बाजार दिया
जब जी चाहा कुचला,
जब जी चाहा दुत्कार दिया'– साहिर लुधियानवी

मुक्ति की राह

आमतौर पर लोगों की धारणा है कि बंदी की मानसिक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। उसकी कल्पना कुंठित हो जाती है और उसकी बुद्धि एक सीमित दायरे में ही चक्कर काटकर रह जाती है। उसका सुषुप्त विवेक मात्र अपनी मुक्ति का स्वप्न देखने लगता है। दूसरों के कल्याण की भावना उसके अंतःस्थल में कभी कोई हलचल पैदा नहीं करती। भारतीय नारी के संबंध में भी आमतौर पर यही धारणा देखी जाती है, लेकिन वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है।

भारतीय नारी को यहाँ के पुरुष वर्ग ने सुख का एक साधन मात्र समझ रखा है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय नारी का विवेक एकदम सुषुप्त हो चुका है। मैत्रेयी की यही खासियत है कि उन्होंने अपने उपन्यास 'कही ईसुरी फाग' में स्त्रियों को केवल प्रताड़ित होते ही नहीं दिखाया है, बल्कि उसके सुषुप्त विवेक को जागृत होते, विद्रोह करते, संघर्ष करते दिखाया है। एक लोक–कथा से आज के

जीवन संघर्ष को मैत्रेयी ने कुछ इस तरह से मेल बैठाया है कि रज्जो आज की संघर्षशील नारी दिखाई देती है। वह अपने अस्तित्व को बचाते हुए अपनी अलग पहचान बनाने के लिए संघर्ष कर रही है।

चुप है लेकिन ये न समझो हम सदा से हारे हैं
राख के नीचे अभी भी जल रहे हैं अंगारे हैं।

–कमला भसीन

एक बने बनाए ढर्रे पर जीवन जीती रज्जो के अंतःकरण में अचानक खलबली मच जाती है, जब ईसुरी को देखती है। फिर वह प्रेम पैदा होता है जो रज्जो को उसकी अपनी 'आइडेंटिटी' का बोध कराता है। उस दिन से पहले तक रज्जो एक बहू थी, पत्नी थी और बहन थी, लेकिन उस दिन उसे अपने अस्तित्व का बोध होता है। वह उन स्त्रियों से थोड़ी भिन्न है जो अपने सपनों को 'कोहबर से सौर तक' में विसर्जित कर देती है।

देखा जाए तो रज्जो एक हाड़–माँस की स्त्री थी, जिसकी देह को भोगने और पीटने वाला एक पुरुष था, लेकिन उसकी देह और मन को चाहने वाला कोई नहीं। ईसुरी के मिलने के बाद उसकी यह शिकायत दूर हो गई। इसलिए वह ईसुरी को टूटकर चाहने लगी।

रज्जो केवल प्रेम में पड़कर वैरागिनी या जोगिनी नहीं होती, न ही अपनी जीवनलीला समाप्त करती है, बल्कि बागी योगिनी बनकर गंगिया बेड़िनी के साथ देशपत दीवान की महिला खुफिया सेना का अंग भी बनती है। यहाँ यह कहना गलत न होगा कि रज्जो को अपनी पहचान का बोध ईसुरी के प्रेम के बाद ही होता है। अगर वह ईसुरी से प्रेम न करती तो आम औरतों की तरह ही चारदीवारी में कैद होकर अपने पति के वियोग में या तो सारी उम्र रोते–रोते गुजार देती या आजीवन विधवा की तरह जीवन बिता देती। लेकिन रजऊ हर हाल में खुश रहने की कोशिश करती है। इसीलिए उसकी सास सोचती है कि "प्रताप की औरत पति के इंतजार में भूखी–प्यासी रहकर रो–बिसूर क्यों नहीं रही? घर से लेकर खेतों तक गेहूँ, मटर, चना की फसलों में हँसती–मुस्कराती क्यों हैं।"[31] एक स्त्री का पति दूर है तो क्या उसे

हँसने–मुस्कुराने का अधिकार नहीं? क्या वह बनाव–श्रृंगार नहीं कर सकती? मैत्रेयी यह सवाल उठाती हैं और रज्जो के माध्यम से हम औरतों को अपनी मर्जी से जीवन जीने का अधिकार देती हैं।

हम देखते हैं कि रज्जो महज ईसुरी की प्रेमिका नहीं है बल्कि प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की सेनानी भी है। यहाँ उन लोगों को ध्यान देना चाहिए जो स्त्री के बारे में यह धारणा रखते हैं कि वह केवल अपनी मुक्ति के बारे में ही सोचती है। दूसरों के लिए नहीं। रज्जो घर की दहलीज लाँघकर निकल जाती है और देश की आजादी से जुड़ जाती है। यही आजादी आज के नारीवादी विमर्श की एक माँग है। रज्जो घर से इसीलिए तो भागी थी कि अपनी इच्छा से अपने अनुसार जीवन को भरपूर जी सके। घर से भागना रज्जो के लिए एक चुनौती थी, जिसे वह स्वीकार करती है। उस सामंती समाज में पर्दों में रहने वाली स्त्रियाँ जब विद्रोह कर दें तो समझ जाना चाहिए कि नारी अब जाग उठी है।

नारियों की शक्ति को बिल्कुल न तुम ललकारना
काली मां का रूप भी आता है हमको धारना

–कमला भसीन

अपनी आकांक्षा का जीवन पाने और जीने की लालसा के साथ ही रज्जो परिवार और प्रेम के द्वंद से भी गुजरती है। घर छोड़ने के बाद भी वह प्रताप एवं उसकी माँ को बार–बार याद करती है। प्रताप की मृत्यु की खबर सुनकर पतिव्रता पत्नी की तरह भावुक हो उठती है और रो पड़ती है। प्रताप एवं सास की मृत्यु की खबर से उसका संवेदनशील हो जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि रज्जो घर छोड़कर भागी थी, संवेदनाएँ छोड़कर नहीं। घर पर रहते हुए भी तो कभी उसकी संवेदना नहीं मरी। प्रताप की प्रताड़ना और सास की गाली भी सहती रही एवं सारी पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाती भी रही। इसे कहते हैं आदर्श स्त्री, जिसे हमारा समाज सिर आँखों पर बैठाएगा, लेकिन जैसे ही रज्जो घर से भागती है, सबकी नजर में पतिता साबित हो जाती है। मैत्रेयी की यह विशेषता है कि वह एक औरत के सभी

रूपों को अच्छी तरह चित्रित करती हैं, चाहे वह घर में बेटी, पत्नी, बहू हो या फिर समाज या देश के लिए लड़ने वाली विद्रोहिणी, संघर्षमयी स्त्री।

सरस्वती देवी जैसी हिम्मती औरत ने इस समाज को यह दिखा दिया कि औरत की दुनिया केवल पति के जीवन तक ही सीमित नहीं है। "...जिंदगी ने बता दिया कि पति न रहने के बाद औरत को अपने बारे में सोचना पड़ता है। अपने लिए फैसले लेने होते हैं।"[32] जिस नाटक, नौटंकी को देखना और फाग, सहर को सुनना औरतों के लिए अपराध माना गया है, सरस्वती देवी धीरे–धीरे उसी फाग मंडली से जुड़ जाती है। एक कुलीन विधवा फाग मंडली बनाए, परिवार के लोग कैसे सहन करते? बार–बार रोड़े अटकाए पर सरस्वती देवी ने हार नहीं मानी। इस समाज को चुनौती देती, समाज से विद्रोह करती हुई सरस्वती देवी घूम–घूमकर फाग मंडली बना लेती है। वह जानती थी कि औरत में इतना साहस है कि उसके पसीने की बूंद गिरे तो रेगिस्तान में हरियाली छा जाए, आँख से आँसू गिरे तो बेलों पर फूल खिल जाएँ।

मीरा सिंह एक ऐसी स्त्री है, जिसने यह साबित कर दिया कि लड़कियाँ लड़कों से कम नहीं होती। उसका विवेक कहीं अधिक कारगर साबित हो सकता है। एक लड़की को अगर पढ़ने का मौका दिया जाए तो वह लड़कों को पछाड़ सकती है। आज बोर्ड परीक्षा परिणाम या इंटरमीडिएट परीक्षा परिणाम हो हर जगह लड़कियाँ ही लड़कों से बाजी मार ले जाती हैं। मीरा बहू ने अपनी लगन, अपनी मेहनत से ससुराल वालों से छिपकर हायर सेकेंडरी पास की। गोद में बच्चा, पारिवारिक जिम्मेदारी निभाते हुए, चूल्हा–चौका, खेत–खलिहान करते हुए भी रात–रात भर पढ़ना मीरा की पढ़ाई के प्रति रुझान को दर्शाता है। कोई क्या कह रहा है इसकी परवाह उसे नहीं थी। तमाम गालियाँ, तमाम ताने सहते हुए भी मीरा बहू ने बी.ए. कर लिया। लेकिन बी.ए. करके मीरा चुप नहीं बैठी, बल्कि आँगनबाड़ी में चयन के बाद महिला सशक्तीकरण की कार्यशालाओं से जुड़ गई। इस सफलता पर गाँव की औरतों ने उस पर थूका, पर इसकी परवाह उसने कभी नहीं की। व्रत–उपवास, साड़ी–जेवर के दायरे से निकलकर अमर्यादित जीवन जीना सीखने वाली औरत मीरा बहू से मीरा सिंह बन गई।

ईसुरी के स्वच्छंद विचार द्वारा मैत्रेयी के विचार सामने आते हैं। ईसुरी कहता है "किसी से ब्याह हो जाना उसके तन–मन को बाँध लेना नहीं है। उसकी इच्छा का आदर करना है।"[33]

ऋतु की माँ भी पारिवारिक प्रताड़ना सहते हुए, प्रेम में धोखा खाकर भी टूटती नहीं है, जीवन से मुँह नहीं चुराती, बल्कि पति के परित्याग के बाद भी ऋतु को जन्म देती है। उसे पालती–पोषती है, पढ़ाती–लिखाती है और अपनी शर्तों पर जीवन जीने की स्वतंत्रता देती है। ऋतु को इस काबिल बनाती है कि वह अपने पैरों पर खड़ी हो सके।

ऋतु एक शोध छात्रा है और ईसुरी–रजऊ की कथा को आधार बनाकर शोध कार्य करना चाहती है। विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित शोध प्रविधियों के दायरे से बाहर जाकर शोधकार्य करना चाहती है। विश्वविद्यालय उसकी थीसिस अस्वीकृत कर देता है। यहाँ पुरुष सत्तात्मक विचार हावी है, क्योंकि ऋतु के गाइड डॉ. पी.के. पांडेय ने साफ कहा है कि "ध्यान रहे तुम उसकी कहानी नहीं लिख रही हो, उसके चरित्र को ईसुरी के काव्य के अनुसार शोध की कसौटी पर कस रही हो।... तुम उस स्त्री से प्रभावित हो जो अपनी आकांक्षा को अभिव्यक्ति देना चाहती है, याद रखना कि तुमको अपनी बात विद्वानों के लिखित मतों और इतिहास ग्रंथों के आधार पर सिद्ध करनी होगी।"[34] यह विडम्बना नहीं तो क्या है! एक छात्रा अपनी मर्जी से शोध करना चाह रही है, लेकिन उसका गाइड उसे शोध नियमों में बाँधने की कोशिश कर रहा है। दूसरी बात रज्जो ईसुरी से ज्यादा प्रभावशाली चरित्र न बन सके इसलिए भी ऋतु का गाइड उसे नियमों में रहने को बाध्य करता है। ऋतु इस बात से अनभिज्ञ नहीं है इसलिए वह अपने गाइड से कहती है "सर, क्या अकेले ईसुरी ही प्रेम को इस तरह जीवंत कर सकते थे।"[35] ऋतु मानती है कि ईसुरी से कम सघन चरित्र रज्जो का नहीं है।

ऋतु द्वारा लिखा गया लोक–कथा पर आधारित शोध–ग्रंथ इस कारण अस्वीकृत कर दिया गया, क्योंकि उसमें रज्जो के चरित्र को ज्यादा प्रबल दिखाया गया था। यह इस पुरुष सत्तात्मक समाज की साजिश नहीं तो क्या है, जो उसे

नियमबद्ध कर शोध और उसकी सोच की परिधि को सीमित दायरे में बाँध रहा है। फिर भी उससे यह अपेक्षा की जाती है कि शोध–ग्रंथ लाखों में एक लिखा जाए। ये कैसी बिडम्बना है कि स्त्री से उसके अनुभवों की बजाय पुरुष के अनुभवों की अभिव्यक्ति की माँग की जाती है, क्या यह विरोधाभाष नहीं है कि एक ओर भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति की माँग की जाती है और दूसरी ओर उसी को स्त्री का सीमित सच कह कर उनका निषेध किया जाता है। यह तो वैसे ही जैसे किसी परिंदे के पर काटकर उससे आकाशीय उड़ान के अनुभव की अपेक्षा की जाती है। आखिर यह कहाँ तक उचित है। ऋतु का गाइड ऋतु को शोध नियमों में बाँधने की चेष्टा करता है, जबकि वह रज्जो के माध्यम से स्त्री जीवन के यथार्थ को सार्वजनिक करना चाहती है। इतने आविष्कार, इतनी उपलब्धियाँ, इतने परिवर्तनों के बाद भी स्त्री को यह सोचने और करने के लिए बाध्य करना कि उसका संसार घर–परिवार, रिश्ते–नाते को पकड़कर बैठना भर है, उसकी रचनात्मकता का संसार बहुत छोटा है– यह नारी शोषण की कितनी बड़ी साजिश है, यह किसी ने सोचा है?

असल में प्रेम तो दो जनों के बीच होता है, जिसमें आनंद, उल्लास और इंद्रिय बोध भी दोनों का शामिल होता है। रज्जो केवल प्रेम में पड़कर तड़पती नहीं है बल्कि वह बाड़ों के भीतर रहकर बाड़ों को तोड़ने वाली औरत है। किसी स्त्री से हमारा समाज ऐसी उम्मीद नहीं करता कि वह प्रेम के नए प्रतिमान रचे। इसलिए गाँव भर के लोग रज्जो से घृणा करते हैं। "वह औरत ही क्या, जो मर्यादा न निभाये? मर्द की नाक मूंछ तो इसी से है।"[36] इसी मार्यादा को बनाए रखने के लिए गाँव के पुरुषों ने अपनी पत्नियों पर पहरे लगा दिए हैं। उन्हें डर है कि कहीं वे भी रज्जो की राह पर न चलने लगे। वे उन्हें गाली भी देते हैं तो औरतें पति की गालियों का बुरा न मानकर उन्हें अपने जीवन का हिस्सा समझ लेती हैं।

ऋतु की कहानी वैसे पूरी नहीं है, परन्तु वह भी कहीं से कमजोर नजर नहीं आती। ऐसा नहीं है कि माधव के चले जाने के बाद वह प्रेम दीवानी हो जाती है। वह अपने को मजबूत करती हुई कहती है– "मुझे माधव पर इस कदर आश्रित नहीं होना चाहिए कि अकेला सफर कदम–कदम पर डराने लगे।"[37] मैत्रेयी यह बताना चाहती हैं

कि बिना पुरुषों के सहारे भी स्त्रियाँ जीवन जी सकती हैं। स्वयं मैत्रेयी का जीवन भी इसमें शामिल है, जो अपने बलबूते पर आज यहाँ तक आ पहुँची हैं। मैत्रेयी, सरस्वती देवी, मीरा सिंह जैसी कई स्त्रियाँ आज भी हम अपने समाज में देख सकते हैं।

करिश्मा बेड़िनी आज की प्रगतिशील विचारों वाली नारी है, जो जीवन को हर रंग में रंगकर देखना चाहती है। वह जीवन को भरपूर जीना चाहती है। शराब की ग्लास ऋतु को लेने की जिद करती हुए कहती है कि "यार तुम कैसी पढ़ी–लिखी हो, दुनिया की कितनी चीजों को जानती हो? रोटी–दाल की होकर रह जाती हैं तुम्हारी जैसी लड़कियाँ और जिंदगी भर रोटी–दाल ही बनाती रहती हैं। घरवाले तुम्हें हर आनंद से काटकर वाहवाही देते रहते हैं और खुद हर स्वाद के पीछे दिवाने रहते हैं।"[38] करिश्मा का यह कहना गलत नहीं है, क्योंकि ससुराल और समाज में लड़की की परेशानियों के लिए लड़की का परिवार एक खास भूमिका अदा करता है– उसे पराया धन मानकर और इस तरह आत्मविश्वास से वंचित रखकर, उसकी आत्मरक्षा की स्वाभाविक प्रवृत्ति का हनन करके और इस तरह उसे पराश्रित बनाकर उसे एक सीमित 'प्रोफाइल' में कैद करके और इस विवेक यानी भला–बुरा पहचानने की क्षमता से दूर रखकर।

हमारे समाज में बेड़िनी जाति को अच्छा नहीं माना जाता, लेकिन करिश्मा बेड़िनी को इसकी परवाह नहीं है। वह अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष कर रही है। वह कहती है कि "बेड़िनी, तुम्हारे यहाँ अच्छा नहीं माना जाता तो न माना जाए। हम यह सब करते ही कहाँ हैं, जो तुमको अच्छा लगे। जो करते हैं, अपने लिए करते हैं। नहीं तो 'बेड़िनी' कहकर हमें जो नीचा दिखाया जाता है, हम बेड़िनें नाच कब का छोड़ गए होते। और तुम्हारे समाज की औरतों की तरह घूंघट में छिप गए होते। फिर बताओ हम खाते कहाँ से? हमारे मर्दों के नाम खेती तो चढ़ी नहीं होती कि अन्न पैदा करेंगे और घर में भर देंगे। हम तो ठसके से कहते हैं कि बेड़िया हमारी जाति है, नाचना–गाना हमारी खेती है, लिहाज परदे का पाला हम अपने हुनर पर नहीं पड़ने देंगे"[39]

करिश्मा जैसा ही साहस आज हमारे समाज में उन औरतों को दिखाने की जरूरत है, जो बिना सिसकियाँ लिए अत्याचार, अन्याय सहन कर जा रही हैं। हमें 'मुझे चाँद चाहिए' की नायिका वर्षा वशिष्ठ की तरह महत्वाकांक्षी होना चाहिए जो हर हाल में अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है। हमें अल्मा की तरह राजनीति में अपने पाँव पसारने होंगे तभी हम इस पुरुष सत्तात्मक समाज से लड़ सकेंगे। ये और बात है कि इस घिनौनी राजनीति में औरतों को हमेशा ही पीछे धकेला जाता है। रघु कहता है कि "जनी के लिए अपनी समाज व्यवस्था और राजनीति में 'नीची नजर' का आरक्षण है।"[40] कोशिश भी यही हो रही है कि वह नीची नजर करके ही रहें। रघु के मुँह से मैत्रेयी आज की राजनीति का पर्दाफाश कर रही हैं जो नहीं चाहता कि औरतें पुरुषों से आगे निकलें। अगर थोड़ी आगे हुईं नहीं कि इंदिरा गाँधी जैसी महिला या फूलन देवी सरीखी औरतों को गोलियों से भून दिया जाता है। इस डर से स्त्रियों को राजनीति से दूर नहीं जाना चाहिए, बल्कि परिणाम की परवाह किए बिना स्त्रियों को आगे बढ़ते रहना चाहिए।

इस पुरुष सत्तात्मक समाज में अकेली औरत को लोग तरह–तरह से शोषित करते हैं। रज्जो के ससुराल में उसके और उसकी सास के अलावा कोई और नहीं है। पति प्रताप भी उसे छोड़कर चला गया है इसलिए राह चलते गाँव के मनचले को उसे छेड़ने का, उससे बद्तमीजी करने का मौका मिल जाता है। लालजी रज्जो को घेर लेता है और लुच्चियायी बाते करता है। बाते ही नहीं करता, उसकी अंगिया भी फाड़ देता है पर रज्जो भी चुप नहीं रहती, लात–घूँसा चलाने लगती है। ऐसे पुरुषों का मत है कि "जौन जनी का आदमी छोड़ जाय, वो बाह्मन की संगत करे, वेद पुरानों में लिखा है। अपना तुपना मिलना पाप की बात नहीं है, पुन्न की रीति है।"[41]

ठाकुर खानदान का इन्दर भी पीछे नहीं रहता है। घर में हुक्का भरने के बहाने आता है और रज्जो को अकेली पाकर उसकी बाह पकड़ लेता है। रज्जो यकायक किसी मर्द को सामने देखकर घबरा जाती है। इन्दर कहता है कि "काय री रज्जो, कितेक दिन कड़ गए, मन तौ करता होगा आदमी के लाने। हम नहीं कहेंगे गंगा सों किसी से भी। मौका है, काकी खेतन तरफ गईं हैं। ससुर ईसुरी फगवारा भी तो न

जाने कितै विलम गया। आजा, तेरौ कौल आजा। अपने बदन में आग कम नहीं। अगली–पिछली कसर पूरी हो जाएगी।"[42] इस कथन से पुरुष मानिकसता को अच्छी तरह समझा जा सकता है जो हमेशा औरत को भोग की दृष्टि से ही देखता है।

रज्जो इन्दर की पकड़ा–पकड़ी से जरा घबरा गई थी, लेकिन उसी क्षण उसमें मुकाबला करने की ताकत भी आ गई। यहाँ रज्जो ने अपनी विवेक बुद्धि का इस्तेमाल किया, इन्दर को पछाड़ने के लिए। कहते हैं औरत चाहे तो अपने हाव–भाव के जरिए पुरुषों को अपने वश में कर सकती है। इसे कहते हैं पुरुष की ताकत भी औरत की बुद्धि के सामने कुछ नहीं कर पाती। रज्जो इन्दर को अपने वश में करके बहलाकर कोठे की ओर ले जाती है और मौका देखकर कोठे के दरवाजे को बंद कर देती है और बाहर से ताला लगा देती है। रज्जो गाँव वालों को पुकारती है और इन्दर की पोल खोल देती है। जो प्रताप उस पर बदचलनी का इल्जाम लगाता था, जिसके अनुसार रज्जो ने घर की मर्यादा को मिट्टी में मिला दिया, उसी प्रताप को याद कर रज्जो कहती है "अब कोई पूछे प्रताप से... घर की मर्यादा रज्जो नहीं बचा सकती, ऐसा मत क्यों बना लिया प्रताप ने? पत्नी के जरिए घर की आबरू लुट जाएगी, इस बात को घट में धरकर क्यों डरता रहता है पति?[43] रज्जो के इस साहस को देखकर उन लोगों का भ्रम दूर हो जाएगा जो लोग स्त्री को कमजोर मानते हैं, कोमलांगी कहकर उसका रूपायन करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि शारीरिक कोमलता तो प्रकृति निर्मित है। जब शारीरिक कोमलता एवं कमजोरी को उभारा जाता है तो उसका यह अर्थ भी व्यक्त होता है कि वह बौद्धिक रूप में भी कमजोर है। ऐसे ही लोग स्त्री की शारीरिक दुर्बलता को उसकी बौद्धिक दुर्बलता की निशानी मानते हैं, पर रज्जो की यह हिम्मत ऐसे भ्रम के वशीभूत लोगों की आँखों पर पड़े पर्दे को हटाकर चुनौती देती है।

अंग्रेजी में एक प्रसिद्ध उक्ति है 'God helps those who help them selves'। नारी उत्थान के संदर्भ में भी यह अक्षरशः सत्य है। जब तक नारी पशुबल की दृष्टि से अधिक समर्थ पुरुष की कृपा, दया और सहारे की मोहताज रहेगी, तब तक उसका कल्याण नहीं होगा। जैसा कि 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में प्रिया का अध्यापक उसे कहता

है "स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है। अपनी नियति को बदल सको तो बदलो...।"[44] हमें समाज की इस धारणा को तोड़ना होगा जो यह मानता है कि औरतें इस प्रकार की लतरें हैं, जो दूसरे पेड़ का सहारा लिए बगैर आगे बढ़ ही नहीं सकती, जिंदा नहीं रह सकतीं। नारी को स्वतंत्रता की तलाश, अपने लिए नई जमीन, नई राह की तलाश स्वयं करनी होगी। स्वतंत्रता पुरुष के स्तर की नहीं बल्कि व्यक्ति के स्तर की चाहिए ताकि वह अपनी स्वेच्छा से खुले आसमान के नीचे साँस ले सके। सही मायने में कहें तो औरत का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय ले सकना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है। असल में हमें स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में भी बदलाव लाना होगा, जिसमें स्त्री का खुद का दृष्टिकोण भी शामिल है–

था डरपोक जो सभी से ज्यादा
उसी ने खोला अंधियारे घर का ताला

स्त्री की स्वतंत्र पहचान, स्वतंत्र जीवनशैली, स्त्री संस्कृति के स्वतंत्र रूपों के सृजन एवं गैर पुरुष संदर्भों की सृष्टि के लिए पहली शर्त है कि स्त्री स्वयं को अलग रूप में देखे। पुरुष से अपनी भिन्नता को पहचाने। स्त्री के रूप में अपने को परिभाषित करे। माँ, बहन, बेटी, पत्नी से पहले वह एक स्त्री है और इंसान है। इसकी सचेत पहचान जब तक स्त्री को नहीं होगी वह पुंसवादी सत्ता की दास बनी रहेगी।

संदर्भ–ग्रंथ

1. 'स्त्री अधिकारों का औचित्य–साधन'– मेरी वोल्सटनक्राप्ट– अनुवाद– मीनाक्षी, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण–2003, पृष्ठ–85
2. 'कही ईसुरी फाग' –मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण–2004, पृष्ठ–95
3. वही, पृष्ठ –115
4. वही, पृष्ठ –108–109
5. वही, पृष्ठ –199
6. वही, पृष्ठ –204
7. वही, पृष्ठ –212
8. वही, पृष्ठ –212
9. वही, पृष्ठ –212
10. वही, पृष्ठ –212
11. वही, पृष्ठ –28
12. वही, पृष्ठ –75
13. वही, पृष्ठ –115
14. 'चार कन्या' –तसलीमा नसरीन, राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण, 2004 पहली आवृत्ति 2006, पृष्ठ–164–165
15. 'कही ईसुरी फाग' पृष्ठ –44
16. वही, पृष्ठ –130
17. 'चाक' –मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण–1997, दूसरी आवृत्ति, 2004,पृष्ठ–214
18. 'कही ईसुरी फाग', पृष्ठ–116
19. 'इदन्नमम' –मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ–100
20. वही पृष्ठ–297
21. 'चार कन्या', पृष्ठ–116–117

22. 'छिन्नमस्ता'– प्रभा खेतान, पृष्ठ–18

23. वही, पृष्ठ–18

24. वही, पृष्ठ–119

25. 'कही ईसुरी फाग', पृष्ठ–170

26. वही, पृष्ठ –170

27. 'परती परिकथा'– फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ–

28. 'कही ईसुरी फाग', पृष्ठ –80

29. वही, पृष्ठ –109

30. वही, पृष्ठ –175

31. वही, पृष्ठ –44

32. वही, पृष्ठ –57

33. वही, पृष्ठ –72

34. वही, पृष्ठ –92

35. वही, पृष्ठ –196

36. वही, पृष्ठ –107

37. वही, पृष्ठ –180

38. वही, पृष्ठ –258

39. वही, पृष्ठ –222

40. वही, पृष्ठ –141

41. वही, पृष्ठ –188

42. वही, पृष्ठ –192

43. वही, पृष्ठ –193

44. 'छिन्नमस्ता'– प्रभा खेतान, पृष्ठ–117

तीसरा–अध्याय

'कही ईसुरी फाग' : कलिकाल में कथा का नया रूप

1. कथ्यगत वैशिष्ट्य
2. शिल्पगत वैशिष्ट्य

कथ्यगत वैशिष्ट्य

बुंदेलखंड का अँचल प्रारंभ से ही कथाकारों का ध्यान अपनी ओर खींचता रहा है। बुंदेलखंडी समाज की पृष्ठिभूमि में वृंदालाल वर्मा ने अनेक उपन्यासों का प्रणयन किया था। वही बुंदेलखंड मैत्रेयी के उपन्यासों में भी उभरा है पर उसका अंदाज अलग है।

बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि पर अनेक महत्वपूर्ण कथाकृतियों की रचना करने के बाद भी अगर मैत्रेयी और उनका बुंदेलखंड चुकता नहीं दिखाई देता तो उसके पीछे एक कारण यह भी है कि मैत्रेयी अपने ही द्वारा रचित मर्यादाओं से न केवल उन्मुक्त संवाद करने को तैयार हैं बल्कि पिछले अनुभवों के दायरे से आगे जाने की कोशिश भी करती हैं। दूसरे स्तर पर देखें तो मैत्रेयी कथा लेखन की तयशुदा प्रविधियों के घेरे से बाहर जाकर भी लिखती हैं।

लोक कोई सीधी–सपाट चीज नहीं है, बल्कि उसमें न जाने कितने विचार, बातें, अनुभव, दृष्टिकोण और इतिहास एक साथ मिले हुए हैं। इन सब के बीच से लेखन का रास्ता खोज पाना सहज संभव नहीं है, परन्तु मैत्रेयी पुष्पा ने 'कही ईसुरी फाग' में इस लोक को जिस साहस, निष्ठा और ईमानदारी से साधा है, उसका कारण उनका वह लोकानुराग है जो उनके अपने बचपन और कैशोर्य के उन जीवन अनुभवों से है जो अब भी उनकी स्मृतियों में जीवंत है।

मैत्रेयी 'कही ईसुरी फाग' में जिस बुंदेलखंड को लेकर आई हैं वह जितना उनका है, उससे कहीं अधिक सरस्वती देवी, बसारी वाली बऊ, करिश्मा बेड़िनी, अनवरी बेगम, तुलसीराम, ओरछा का गाइड शालिगराम कटारे का है। इन सभी लोगों द्वारा बिखरे इतिहास को मैत्रेयी ने एक जगह कुछ इस तरह से भाव एवं संवेदना से सजाया है कि अब यह केवल फगवारे ईसुरी और उसकी बदनाम प्रेमिका रजऊ की प्रेम कहानी भर नहीं रह गया है, बल्कि स्त्री–पुरुष के दुःखद संबंधों और स्त्री की

वेदना और क्षोभ की कहानी भी बन गई है। इतना ही नहीं वह स्त्री के साहस, संघर्ष और मुक्ति की भी गाथा है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यास 'कही ईसुरी फाग' में इस बात को बहुत अच्छी तरह से दिखाती है कि यह सामाजिक–सांस्कृतिक सृजन पुरुष समाज ने किया है। इसी समाज में इस उपन्यास की कथा लोक कवि ईसुरी और उनकी प्रेरणा या उनकी प्रेमिका (जो बार–बार उनकी फागो में रजऊ संबोधन के साथ आती है) के प्रेम और द्वंद्व तथा आरंभ और अंत की है। इस कथा का आश्रय है एक समकालीन युवती ऋतु और उसका प्रेमी माधव।

उपन्यास का आरंभ शोध छात्रा ऋतु की पी.एच.डी. थिसिस के 'अस्वीकृति पत्र' के साथ होता है और अंत उसकी आकांक्षा की अतृप्ति के साथ। लेकिन ध्यान देने की बात है कि कथा इसके बीच में है– ऋतु की और रजऊ की। ऋतु बने–बनाए ढाँचे के बाहर जाकर लोक कवि ईसुरी के जीवन और काव्य तथा उनकी प्रेमिका रजऊ के संदर्भ में अपने प्रेमी मित्र माधव के साथ मिलकर जो सामग्री इकट्ठा करती है– उपन्यास की कथा उस संग्रह और संग्रह करने की प्रकिया में है।

प्रेम मनुष्य जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है। रजऊ अपने पति प्रताप की अंकशायनी थी, लेकिन प्रताप उसके मन में नहीं था। वह पति तो था पर उससे प्यार नहीं करता था। लेकिन वह प्रताप के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह बखूबी करती है। ये और बात है कि उसकी आँखों में किसी और का ही प्रकाश था। पति प्रताप रज्जो की देह को एक हाड़–माँस से ज्यादा कुछ नहीं समझता था। उसकी देह को भोगने और पीटने वाला पुरुष था, वह उसकी देह और मन को चाहने वाला नहीं। पर ईसुरी के आगमन ने रजऊ के शरीर और मन को इतना चाहा कि वह उसकी जोगन हो गई। प्रेमी ईसुरी भी जोगी हो गया। न तन की सुध रही न जीवन की। नींद–चैन सब गया। दोनों में प्रेम की अगन कुछ इस तरह लगी कि दोनों का परिवार टूट गया। चूँकि दोनों विवाहित थे, तब जाहिर था कि परिवार बिखरता ही।

रजऊ का पति प्रताप इस प्रेम को कारण बनाकर सेना में भर्ती हो जाता है और विद्रोह के दौरान शहीद होता है। प्रताप की माँ तड़प–तड़पकर मर गई। रज्जो

ईसुरी की एक झलक पाने के लिए घर छोड़कर भाग गई। उससे मिलने की आस में वह देशपथ की टोली में शामिल हुई और उसका भी अंत हो गया। दरअसल, रजऊ का अंत 'मुक्ति की आकांक्षा' में निहित है। घर से भागना एक तरह से स्त्री मुक्ति अर्थात अपनी आकांक्षा का जीवन पाने और जीने की लालसा से जुड़ा है, वहीं दूसरी तरह राष्ट्र की मुक्ति के सवाल से जुड़ा है। मैत्रेयी ने इस उपन्यास को अपने अन्य उपन्यासों से इसी मायने में अलग कर लिया है।

इस उपन्यास में जहाँ अपनी आकांक्षा का जीवन पाने और जीने का प्रश्न है, वहीं प्रेम और परिवार का द्वंद्व भी है। रज्जो ईसुरी से प्रेम के बाद घर छोड़कर भाग तो जाती है, लेकिन वह प्रताप और उसकी माँ को छोड़कर भी छोड़ नहीं पाती। वह दो पाटों– प्रेमी और पति– में पिसती रहती है। एक तरफ रज्जो 'कुलटा', 'छिनार', 'कुतिया', जैसे व्यंग्य वाणों की मार को झेलती– सहती है, तो दूसरी ओर पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाना भी अपना कर्त्तव्य समझती है। घर छोड़ने के बाद भी बार–बार प्रताप और उसकी माँ को वह याद करके तड़पती है। प्रताप की मृत्यु की खबर सुनकर तो वह पतिव्रता स्त्री की तरह भावुक हो जाती है "रज्जो की यादें विलापों में बदल गई।... रह–रहकर मन पति की मौत से टकरा जाता है।... रज्जो क्या करे, पति का एक–एक गुन जुड़ सिमटकर बड़े से बड़ा हो जाता है, उसकी यादों के दायरे बढ़ रहे हैं। साथ ही उन दायरों में मौत प्रवेश करती है।"[1] पति एवं सास की मृत्यु की खबर से रजऊ का भावुक हो जाना मनुष्यता की ही निशानी है। "गंगिया समझ रही थी कि कैसे एक पत्नी पति के तमाम जुल्मों को भूल जाने का संस्कार पाले रहती है। समय निकलने पर सिर्फ पति का देवता स्वरूप याद रह जाता है। उसी की आस्था मन पर छायी रहती है। रज्जो को देखकर कौन कहेगा कि यह पति के घर से भागी हुई औरत है।"[2] इससे स्पष्ट है कि रज्जो घर छोड़कर भागी है, संवेदनाएँ छोड़कर नहीं। पर घर भी तो संवेदनाओं के वशीभूत होकर छोड़ा है।

क्या स्त्री को अपने लिए जीने का कोई हक नहीं? यह उपन्यास इस विडम्बना को उद्‌घाटित करता है। सदियों से स्त्रियों के अंदर जो संस्कार भरे गए हैं, उस संस्कार से एकाएक मुक्ति रज्जो के लिए संभव नहीं थी, वो भी उस सामंती समाज

में। आज की पढ़ी–लिखी एवं आत्मनिर्भर स्त्रियों तक से यह संभव नहीं होता, तब ऐसे डेढ़ सौ वर्ष पहले की एक अनपढ़ और पराश्रित स्त्री का यह साहस क्या कम मायने रखता है? क्या यह आज के समाज के लिए चुनौती नहीं है।

इस उपन्यास के संदर्भ में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि रज्जो का चरित्र अलग–अलग लोगों द्वारा कही गई कहानियों में खुलता है। रज्जो का चरित्र उन संवादों में भी उभरकर आया है जो वह गंगिया बेड़िनी से करती है।

रज्जो का एक चरित्र अपने भाई के साथ बातचीत में दिखाई देता है। एक ओर प्रेमी है तो दूसरी ओर जेठ और अपने ही भाई का लालच। ऐसे में रज्जों के भाई के साथ गुजारे जिंदगी के कुछ लम्हें उसकी आँखों में आँसू ले आते हैं। बचपन से बहादुरी की कहानी सुनने वाली रज्जो के दिमाग में वह कहानी याद है जिसमें एक भाई अपनी बहन को राजमहल से मुक्त कराकर लाया था। रज्जो भाई के विषय में सोचती है "क्या मेरा भाई मेरा पक्ष ले पाएगा?... क्या कहेगा? क्या दलील देगा?"[3] लेकिन यहाँ उसकी सोच के विपरीत हुआ। भाई राक्षस से मिल गया। उसकी सुरक्षा की गारंटी लेने वाला भाई ही उसका उस राक्षस के आगे डालकर चला गया।

रज्जो प्रेम की पीड़ा में तड़प रही है। ईसुरी की याद में फागे गाती है–

'तुम पर तलफरए दृग दोई
आन मिलो निरमोई
सोने की जा बनी देध्या, कंचन जुबना दोई
जबसे बिछुरन पिय से हो गई, नई रात भर सोई'[4]

ईसुरी से प्रेम क्या हो गया, रज्जो पूरे गाँव में बदनाम हो गई। गाँव में स्त्रियाँ उसके विषय में तरह–तरह की बातें करने लगीं। गाँव के मनचले उसे ऐसी–वैसी समझकर उसकी स्थिति का लाभ उठाकर भोगना चाहते हैं। रज्जो ऐसे लोगों का डटकर मुकाबला करती है। उसका यह साहस ही उसे अन्य ग्रामीण स्त्रियों से अलग करता है। उसका जेठ रामदास संपत्ति पर कब्जा करने के लिए रज्जो से शादी का हथकंडा अपनाता है। इस षड्यंत्र में रज्जो का भाई भी साथ देता है, पर रज्जो शादी से इंकार करके उनके अरमानों पर पानी फेर देती है।

इस उपन्यास में सभी स्त्रियों का चरित्र महत्वपूर्ण है, लेकिन ऋतु का चरित्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ऋतु एक ऐसी लड़की है जिसकी माँ प्रेम में धोखा खाकर भी, पति द्वारा घर से निकाले जाने पर भी जीवन से मुँह नहीं चुराती है। उसने ऋतु को पाला–पोषा और अपनी शर्तों पर जीने की स्वतंत्रता दी। यहाँ कस्तूरी और मैत्रेयी पुष्पा दोनों का जीवन समाहित हो रहा है। ऋतु जिसने माधव से प्रेम किया, उसे अपना सब कुछ माना, उसके साथ भविष्य के सपने देखे, वहीं माधव उसे सुखी गृहस्थी का सपना दिखाकर चीन चला जाता है। ऋतु का प्रेम मन तक ही सीमित नहीं है, वह शारीरिक संबंध तक पहुँच जाता है जो सहज है। असल में संशय के इस युग में प्रेम और सेक्स अब अलग–अलग द्वीप नहीं रहे, बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू हो गए हैं। 'प्रेम में देह जरूरी नहीं' की मान्यता आज खंडित हो रही है। आज स्त्री और पुरुष का निःशेष समर्पण, एक–दूसरे के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना, मन और देह से हमेशा के लिए एक होने की चाह ही प्रमुख हो गई है। इसलिए ऋतु और माधव के प्रेम में देह की माँग अनैतिक नहीं है, भले ही यह इस रूढ़िवादी समाज को मान्य न हो।

ईसुरी और रज्जो तथा ऋतु और माधव का प्रेम आपस में मेल खाता है। इस प्रेम–प्रसंग को चित्रित करते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने स्वाधीनता संग्राम से लेकर गुजरात कांड तक को समेटने की कोशिश की है। माधव अपने पत्र में गुजरात नर–संहार पर टिप्पणी करता है "जो नवयुवक दरिंदों के रूप में हत्याएँ कर रहे थे, आग लगा रहे थे, बलात्कार कर रहे थे, पैसे की एवज में आए थे, बिना पैसे पाए न कोई कारसेवक था, न कोई धर्मांधों का दुश्मन। धर्म पैसे का जरिया है और राजनीति पैसे का खजाना। गोधरा और अहमदाबाद कांड भाड़े का सौदा था।"[5] प्रेम कहानी में ऐसा वर्णन?

दरअसल, लेखिका ने रज्जो का 1857 के संग्राम से और ऋतु का अपने समय की राजनीति से संबंध दिखाकर कथा को अर्थवत्ता प्रदान की है। उपन्यास में करिश्मा का यह कथन एक विशेष अर्थ में है। "ऋतु तुम तो लिखोगी। तुम्हे ये सब बातें भी लिखनी चाहिए। कि जो कुछ गंगिया, रजऊ, ईसुरी म्हराज, देशपत जैसे लोग भुगत

रहे थे, लक्ष्मीबाई झेल रही थी, वे उन अँगरेजों के जुल्म थे, जो हमने नहीं बुलाए थे। पर अब, अब तो मारकाट, जलाना–भूनना उनके हाथों हो रहा है, जिनको हमनें वोट देकर चुना है। यह कलंक कथा, जो अँगरेजों की नहीं, हमारी है, ऋतु तुम्हारी खोज के किस अध्याय में आएगी? आनी चाहिए, भले इसमें गंगिया, झलकारी, काना, मुंदरा, तात्या, मोरोपंत जैसे वीर–वीरांगनाओं के नाम न हों। वह आईना तो होगा, जो डेढ़ सौ साल बाद के आजाद देश के चेहरे की झलकी दिखा देगा।"[6]

केवल प्रेम कहानी में शायद यह बात नहीं होती जो इन प्रसंगों से पैदा होती है। अनवरी बेगम के पूर्वजों ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी, लेकिन इससे अनवरी बेगम इतनी डर गई कि आजाद देश में गुजरात के गोधरा और अहमदाबाद की बातें भूले से भी जुबान पर नहीं लाना चाहती, बाबरी मस्जिद के बारे में बात चलाने पर बात बदल देती हैं। यह डर ऋतु की माँ को डरा नहीं पाते। अपनी शर्तों पर जीवन जीने की लालसा रखने वाली ऋतु को माधव के संपन्न मामा गुंडे भेजकर डराते हैं ताकि माधव का पीछा ऋतु छोड़ दे। सरस्वती देवी को भी ये गुंडे अपना काम करने नहीं देते। यह हमारा आजाद भारत है। क्या फर्क रह गया है डेढ़ सौ साल पहले और अब के भारत में?

जिस तरह रज्जो के समय एक निचले तबके के किसान की लड़की को उठवा लिया जाता था, क्या आज वह नहीं हो रहा है? ये और बात है कि तब ये राजे–रजवाड़ों के लिए शान की बात थी, लेकिन तब और अब पिसती कौन थी, औरत ही न!

पुरुष स्त्री को अब भी अपनी जागीर ही समझता है। अगर ऐसा नहीं समझता तो स्त्री के विरुद्ध तरह–तरह के दंडों का विधान कैसे करता? मैत्रेयी ने इस व्यवस्था के केंद्र में दंड धारण किए बैठी इस पुरुष सत्ता पर कई मार्मिक और तीखी टिप्पणियाँ की हैं। ऋतु अपने प्रेमी माधव और उसके मामा तथा माता–पिता को लक्ष्य कर कहती है "भाड़ में जाए माधव– मैंने यही सोचा था और खुद को ऐसी निचाइयों में धकेली हुई पाकर मन ही मन माधव के मामा की ऊँचाइयों पर थूक दिया था, जिनकी विरासत में माधव को जाना है।"[7]

जिस असाधारण मानसिकता की उपज यह कृति है, उसमें स्त्री तमाम लौकिक संबंधों के प्रति भावनाओं से भरी हुई है, लेकिन न तो वह पति या बेटे की जागीर है, न प्रेमी की। मैत्रेयी स्त्री–पुरुष के बीच जन्म लेने वाले और जारी रहने वाले किसी ऐसे संबंध को स्वीकारने को तैयार नहीं है जो उसे यंत्र स्वरूप मानव बना दे।

उपन्यास का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है करिश्मा बेड़िनी और उसकी परदादी गंगिया का चित्रण। स्त्री को उसमें भी सदियों से हेय समझे जाने वाली बेड़िनियों के अंतरंग को ही नहीं, राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में उनकी भूमिकाओं का उल्लेख कर मैत्रेयी ने हम पाठकों की दृष्टि को नई दिशा और विस्तार दिया है। करिश्मा ऋतु से कहती है "यार तुम कैसी पढ़ी–लिखी हो, दुनिया की कितनी चीजों को जानती हो। रोटी–दाल की होकर रह जाती हैं तुम्हारी जैसी लड़कियाँ और जिंदगी भर रोटी–दाल ही बनाती रहती हैं। घरवाले तुम्हें हर आनंद से काटकर वाहवाही देते रहते हैं और खुद हर स्वाद के पीछे दिवाने रहते हैं।"[8] करिश्मा का यह कथन मात्र कथन नहीं है, बल्कि चुनौती है आज के समाज के लिए।

स्त्री जीवन के अनेक परतों वाले यथार्थ को यह उपन्यास जिस सामाजिक और ऐतिहासिक फलक पर उठाता है, उसका साँस्कृतिक भूगोल बुंदेलखंड का लोक जीवन है। ईसुरी के बगैर अगर बुंदेलखंड की पहचान संभव नहीं है तो रजऊ के बगैर ईसुरी की। मैत्रेयी बुंदेलखंड की नई पहचान बनकर उभरी हैं, पर वे आँचलिक कथा लेखिका नहीं हैं।

मैत्रेयी अंचल विशेष को अपने कथ्य की पृष्ठभूमि और परिप्रेक्ष्य के रूप में प्रयुक्त करती हुईं, वे आधुनिक जीवन, लोकतंत्र, व्यवस्था के सामंती ढाँचे, परम्परा की रूढ़ियों और समकालीन भटकावों और असंगतियों के प्रश्नों और उनके यथार्थ को बेबाक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। दस्तावेजी इतिहास, लोकस्मृति और व्यावहारिक जीवन के संदर्भों की जैसी संवेदना रचती हैं उसमें गहरी वैचारिकता भी विद्यमान है एवं भावुकता भी।

यह उपन्यास ईसुरी और रजऊ के प्रेम का संवेदनात्मक पाठ है पर यह जिस तरह अपने कथाकाल में आता जाता है, बार–बार अपने समय की चिंताओं से जुड़ता

है, उससे मैत्रेयी के बौद्धिक ज्ञान का परिचय मिलता है। यह उपन्यास एक हद तक बुंदेलखंड की लोक संस्कृति के साथ ही लोक स्मृतियाँ सुरक्षित रखने की भी कोशिश है। मैत्रेयी यह बताना चाहती हैं कि ईसुरी और रजऊ सिर्फ किसी स्थान विशेष के ही नहीं, किसी खास काल के ही नहीं थे, बल्कि बुंदेलखंड की धरती के साथ–साथ हर गाँव, हर क्षण और हर मिट्टी में उनके कथा की सुगंध मिलेगी। दोनों की कहानी गाँव–गाँव में रची बसी है।

इस उपन्यास के शीर्षक से लगता है कि ईसुरी इसके केंद्र में है, लेकिन उपन्यास खत्म होते–होते रजऊ केंद्रीय चरित्र बन जाती है। ईसुरी एक फगवारा या प्रेमी बनकर रह जाता है। रजऊ का प्रेम उन्हें भी बदलता है। ईसुरी इस बात को स्वीकार करता है कि "मैं भी कहाँ ऐसा था कि एक औरत के लिए सैकड़ों फागे कहता जाऊँ। रजऊ की प्रीतिभरी आँखों का करिश्मा था, उसकी रति–गति का जादू था, हम दोनों की चितवन का प्यार था, नित नई फागे रचता जाता और भूल जाता कि मैं मर्यादा से बंधे समाज के बीच हूँ। सच मैंने उसके सामने धर्म, मान और अहंकार के हथियार डाल दिए थे, जैसे फाग की तरह मैं एक आजाद छंद हूँ, जिसे शास्त्रीय नियम बाँध नहीं पाते?"[9] पर ईसुरी रजऊ की तरह आजाद नहीं हो पाता। प्रेमासक्त होकर आजाद हुआ ईसुरी एक समय के बाद अपने में ही सिमटकर रह जाता है। सही मायने में आजाद होती है रजऊ, जो न सिर्फ घर की चौखट लाँघकर निकल जाती है, बल्कि प्रेम से बड़े एक और उद्देश्य– देश की आजादी से जुड़ जाती है। ईसुरी फाग का रचयिता बनकर ही रह जाता है, जबकि रजऊ ईसुरी के फाग से गायिका बनकर घर से निकलती है और एक साहसी, हिम्मती, जुझारू सिपाही बनकर देश की आजादी में शहीद हो जाती है।

मैत्रेयी का यह उपन्यास कथ्य के तौर पर एक बेहतरीन उपन्यास साबित हुआ है। इस उपन्यास में काल्पनिक रजऊ और वास्तविक ईसुरी की प्रेम के ही बयान नहीं हैं, बल्कि इसे मैत्रेयी ने प्रेमगाथा से वीरगाथा में तब्दील कर दिया है। यह वीरगाथा ईसुरी की नहीं बल्कि रजऊ की वीरगाथा है। एक स्त्री और एक प्रेमिका की वीरगाथा। उपन्यास की रजऊ महज ईसुरी के फागों की संबोधिता या प्रेमिका बनकर

नहीं रह जाती, बल्कि 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की सेनानी भी बनती है। वह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनके समकालीन देशपत दीवान का साथ देती है। हालाँकि रजऊ का यह सेनानी रूप कल्पित है, लेकिन उसका प्रेमिका एवं सेनानी रूप कल्पित होकर भी काल्पनिक नहीं लगता, क्योंकि मैत्रेयी ने इसके माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की है कि रजऊ प्रेम में पड़कर सिर्फ प्रेम दिवानी ही नहीं होती, बल्कि उसके व्यक्तित्व का रूपांतरण भी होता है। इस तरह उपन्यास का कथ्य जिस बात को रेखांकित करता है कि किस तरह प्रेम व्यक्तित्व को बदलता है, उसे सक्रिय बनाता है, साथ ही ईसुरी की तरह तोड़ता भी है।

इस तरह देखा जाए तो कथ्य के रूप में 'कही ईसुरी फाग' उनके अन्य उपन्यासों से अलग एवं विशिष्ट है। उनका अन्य उपन्यास जहाँ घर–परिवार के स्तर तक ही घिरा रहता है, वहीं 'कही ईसुरी फाग' घर की दहलीज लाँघकर देश के लिए बलिदान होने की भी प्रेरणा देता है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य

'कही ईसुरी फाग' का कथ्य जिस प्रकार अलग हटकर है, उसी तरह इसके शिल्प में भी नवीनता दिखाई देती हैं। मैत्रेयी की यह खासियत रही है कि वह अपने हर उपन्यास में कुछ अलग, कुछ नया करने की कोशिश करती हैं।

इस उपन्यास में मैत्रेयी ने जिस कथा पद्धति को अपनाया है वह हमें हजारी प्रसाद द्विवेदी की याद दिलाता है। जिस तरह हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गप्पियों का प्रयोग 'वाणभट्ट की आत्मकथा' को रचते हुए अपनाया था, कुछ उसी तरह का प्रयोग मैत्रेयी ने अपने इस उपन्यास में किया है। 'कही ईसुरी फाग में भी कहानी कहने वालों का एक वर्ग है, जिसमें वह एन.सी.सी. टीचर तक आता है, "जो दरमियाते कद का गहरा साँवला आदमी है, जिसकी नाक बैठी हुई सी है, दाँत बेहद सफेद, शायद काले रंग के कारण और जिसने नदी किनारे शीशम की छाया में बैठकर ऋतु और अनवरी बेगम को देशपत दीवान, धुबैला महल से भागे राजकुमार, देशपत की खुफिया

स्त्री सेना की गंगिया और रज्जो के किस्से सुनाए थे।"[10] जरा मैत्रेयी की वर्णन शैली पर ध्यान दीजिए, ऐसा लगता है कि जैसे एन.सी.सी. टीचर हमारे सामने बैठा हो। यहाँ रेखाचित्र शैली का प्रयोग किया गया है। यह बात उनके उपन्यास में कई जगह उभर कर आई हैं।

1857 के मुक्ति संग्राम से लेकर गुजरात के नर संहार तक की कथा को अपने में समेटे यह उपन्यास हम पाठकों को कई सवालों के घेरे में लाकर खड़ा करता है। समकालीन हिन्दी उपन्यास को उसकी कथा की जानी–पहचानी सीमाओं से निकालकर मैत्रेयी ने लेखक और पाठक के संवाद को मंच बना दिया है। हालाँकि ऊपरी तौर पर देखा जाए तो यह उपन्यास और कुछ नहीं, बल्कि कई कहानियों का जोड़ नजर आता है, जिसके कथावाचक कई हैं, लेकिन इस सबके बीच जिस शिल्प का प्रयोग किया गया है वह बेजोड़ है। ईसुरी–रजऊ की कहानी फागों के जरिए भी रची गई है। एक प्रेम कहानी के साथ–साथ कई प्रेम कहानियाँ जुड़ी हुई हैं जो एक साथ चलती हैं।

ईसुरी–रजऊ की कहानी कहने वाले कई पात्र हैं, करिश्मा बेड़िनी, अनवरी बेगम, शालिगराम कटारे, एन.सी.सी. टीचर, मीरा सिंह। हालाँकि कहानी कहने वाले पात्रों की संख्या अधिक है, लेकिन ईसुरी–रजऊ की कहानी कहीं से टूटती नजर नहीं आती, एक निरंतरता बनी रहती है। हालाँकि शुरू में पढ़ने पर उपन्यास थोड़ा बोरिंग लगता है, लेकिन जैसे–जैसे उपन्यास की कथा आगे बढ़ती है, वैसे–वैसे पाठकों को रुचिकर लगने लगता है। यह मैत्रेयी की लेखन कला की जादूगरी है।

ऋतु और माधव की प्रेमकथा शोधकर्म के द्वारा विज्ञापित की जाती है। मैत्रेयी ने दोनों के प्रेम को बहुत सहज ढंग से दिखाया है। शोध के दौरान ही ऋतु और माधव के अंतरंग संबंध का भी वर्णन है।

वैसे देखी जाए तो यह कहानी जितनी फागों के द्वारा उभरकर आई है, उतनी ही उन दस्तावेजी साक्ष्यों के द्वारा भी जिनका बयान देशपत की कहानी है। इतिहास, लोक–स्मृति और कल्पना ने मिलकर जो प्रवाहपूर्ण, सहज शिल्प रचा गया है, उससे कहानी के पाठकों की चेतना अधिक समृद्ध हो सकी है। पाठक उस लोक की

अपराजेयता और विराटता का अनुभव कर सकें हैं जिसे नागर और अभिजन कहे जाने वालों ने अपढ़ और गँवार समझ रखा था।

उपन्यास में जितने भी पात्र आए हैं, लेखिका ने कोशिश की है कि सबके साथ न्याय हो। हालाँकि उपन्यास का नायक ईसुरी है, लेकिन रजऊ के चरित्र को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उपन्यास की नायिका रजऊ है, वही मुख्य पात्र है। रजऊ के सामने ईसुरी का चरित्र फीका पड़ गया है।

मैत्रेयी ने रज्जो और ईसुरी की कथा को लोगों की स्मृतियों में जिंदा दिखाया है, पर सबकी स्मृति में एक तरह से नहीं। जितनी स्मृतियाँ हैं उतने ही रंग हैं इस कथा के। महत्वपूर्ण बात यह है कि मैत्रेयी ने अलग–अलग लोगों की स्मृति को अपने समय और अपने समय के विमर्श से जोड़कर एक नया रंग दिया है।

ईसुरी एक ऐसे प्रेमी के रूप में आते हैं, जिसके प्रेम पर संदेह नहीं किया जा सकता। एक लालसा ईसुरी के मन में अटकी रह गई–

"बैरी हो गए पुरा भरे के
रजऊ से मेल करे सें
लगी लगन जा छूटन नइयाँ कोनउ
जतन करे से
वे जै हैं, हम जान न दै हैं अपनी नजर
तरे से
'ईसुर' कात कवै दिन आहै, हम जेवे
वे परस"[11]

इस फाग में एक आकांक्षा है, जो पूरी न हो सकी। यही ईसुरी और रजऊ के प्रेम की विडम्बना है, साथ ही हमारे समाज की विडम्बना भी। मैत्रेयी ने इसी बिडम्बना को इस फाग में प्रभावपूर्ण ढंग से स्वर दिया है और इस स्वर की भाषा भी ऐसी नहीं है कि संप्रेषित न हो सके।

भाषा अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं होती, उसका महत्व तब होता है जब वह भावानुकूल रूप धारण करती है। इससे अधिक उसका महत्व तब होता है, जब वह

लेखक की अभिव्यक्ति का विशेष ढंग बन जाती है। मैत्रेयी के बारे में यह बात शत–प्रतिशत सही है। उनकी अभिव्यक्ति का विशेष ढंग ही उनको समकालीन उपन्यासकारों में विशिष्ट स्थान दिलाता है। उनकी भाषा में प्रवाहपूर्णता एवं संवेदनशीलता ऐसी है कि सहज ही किसी पाठक को अपनी ओर खींच सकती है। जनसमाज में प्रचलित शब्दावली और बरतने का ढंग, बोली तथा व्यक्ति विशेष के कहने का ढंग मैत्रेयी के शिल्प पक्ष को मजबूती प्रदान करतें हैं।

इस उपन्यास में बुंदेलखंडी भाषा का गहरा असर है। बिल्कुल उसी तरह जैसे रेणु के 'मैला आँचल' पर या राही मासूम रजा के 'आधा गाँव' पर स्थानीय बोलियों का प्रभाव है। जिस प्रकार ये दोनों उपन्यास अपने भाषागत कारणों से और महत्वपूर्ण हो गए हैं उसी तरह मैत्रेयी का यह उपन्यास भी समय के साथ अपना महत्व सिद्ध करेगा। रज्जो की सास की बुंदेलखंडी बोली पर गौर करें "मोरे पूत तुम इतै कलह के लाने नई आए। हम कैरए कि बज्जुर तिरिया से मत भिड़ो। अपना मूंड फोरोगे।"[12] घबराइए नहीं पूरा उपन्यास इसी बोली में नहीं है। खड़ी बोली और बुंदेलखंडी बोली का अच्छा मिलाप मैत्रेयी ने किया है। इसीलिए भाषा इतनी सरल और सहज बन पाई है कि किसी के भी समझ में आसानी से आ जाए।

गाँव की औरतें कैसे गाली देती हैं या गुस्से में कैसे बोलती हैं, रजऊ की सास के इस कथन से अंदाजा लगाया जा सकता है– "ते आग लगी, जनमजली अकेली रह रहकें बज्जुर भई है। मोरा पूत जैसे–तैसे घर लौटा और ते... छिनार हो गई सांचऊं?"[13] औरतों की बात छोड़ दीजिए, एक मर्द अपनी पत्नी को कैसे गालियों से नवाजता है, जरा उस पर गौर करें। प्रताप रज्जो से कहता है "तुझ छिनार पर मैं बंदूक की गोली खर्च करूँगा भला?... कुतिया, हम चले गए तो तेरे लिए हर दिन क्वार का दिन हो गया...। तमाम पाल लिए रंडी ने।"[14]

कहीं–कहीं भाषा में कविता की सी तरलता है, जो पाठक को बाँधती है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा– "गंगिया कैसे संदेसे लाई है! वह अपने दुःखों की अभ्यस्त हो गई थी, क्या फगवारे अब भी फागों की गुंजान में रहते थे? हवा चलती थी, पंछी बोलते थे, वह उदास होठों से मुस्करा उठती थी। अब जानलेवा फलक को कहाँ धरे,

कहाँ उठाएँ? फागें गुनाह हो गई, उसी गुनाह की सजाएँ ठौर–ठौर दी जा रही है। कहाँ ठिया मिलेगा अब?''[15] ऐसी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग अज्ञेय ने अपने उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' में किया है।

मैत्रेयी ने बुंदेलखंड के लोक को जिस जीवंत और मुखर शैली में लिखा है उससे उपन्यास लेखन की कलात्मक चुप्पियों में खलल पड़ा होगा। यहाँ यह कहना गलत न होगा कि जिस तरह मिथिला विद्यापति से, ब्रज सूरदास से, अवध तुलसीदास से पहचाना जाता है, वैसे ही बुंदेलखंड मैत्रेयी से पहचाना जाएगा। इसमें शक नहीं कि मैत्रेयी बुंदेलखंड की नई पहचान बनकर उभरी हैं।

इस उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि इसमें लोकवाणी के साथ–साथ सुंदर फागों का समन्वय भी किया गया है, जो उपन्यास की खूबसूरती को बढ़ा देता है। फगवारे ईसुरी तो अपनी बात फागो के जरिए ही रज्जो तक पहुँचाते हैं–

''रजऊ हँसती नजर परे से
नेहा बिना करे सें
हम तौ मन खों मारे बैठे, बरके रात अरे सें
सांसऊं जिदिना जिद आजै है, बचौ न एक धरे से
'ईसुर' मिलौ प्रान मिल जैहें, कै बन आय मरे सें''[16]

ईसुरी के दिल की बात इन फागों में देखें–

''दिल की राम हमारी जानें
मित्र झूठ न मानें
हम तुम लाल बतात जात ते, आज रात बर्रानें
सा परतीत आज भई बातें, सपनेन काए दिखानें?
न हो, हो देख लेत हैं, फूले नई समानें
भौत, दिनन से मोरो ईसुर तुमें लगौ दिल चानें''[17]

रजऊ केवल ईसुरी की प्रेमिका नहीं है। सही मायने में देखा जाए तो वह दुनिया भर के प्रेमियों की प्रेमिका है। चिरंतन, सर्वकालिक, सार्वदेशिक, सभी प्रेमियों

का डी.एन.ए. उसमें मिल जाएगा। जैनेंद्र और शरतचंद की रचनाओं को देखकर उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने जिस तन्मयता से अपनी नायिकाओं का चित्रण किया है, उतनी तन्मयता से अन्य किसी लेखक ने नहीं किया है। असल में अगर स्त्री मन को जानना हो तो उसके लिए थोड़ी सी आवारगी, थोड़ी सी स्वच्छंदता नितांत अनिवार्य है, तभी आप विद्यापति, जयदेव, तुलसीदास हो सकते हैं, वरना आप कभी बच्चन, घनानंद, ग़ालिब नहीं बन सकते। यदि घनानंद को सुजान न मिली होती, बच्चन के जीवन में आइरिश न आई होती, गालिब के जीवन में उस डोमन का प्रवेश न हुआ होता तो क्या वह वेदना, वह संवेदना संभव थी, जो उनमें आ पायी? ईसुरी के जीवन में भी यदि रजऊ न आयी होती तो जो पहचान ईसुरी को अपनी फागों के जरिए मिली, वह कभी न मिली होती। रजऊ के आने से ही परम्परा को ललकारने का यह दुस्साहस, समाज को चुनौती देने का यह अकंप विश्वास ईसुरी में संभव हो पाया। उसने रजऊ को प्रेरणा बनाकर फागों की रचना की।

ईसुरी के फाग में वर्णित नारी देह को देखकर कुछ लोग उन पर अश्लीलता और अनैतिकता का आरोप लगा सकते हैं, लेकिन ईसुरी को केवल श्लीलता–अश्लीलता, नैतिकता–अनैतिकता के निकष पर कसकर उनका मूल्याँकन नहीं कर सकते है। असल में ईसुरी स्त्री–पुरुष संबंधों की नैतिकता को चुनौती देने वाला उस जैसा कवि हिन्दी और उसकी बोलियों में दूसरा कोई नहीं हुआ।

मैत्रेयी ने फागों का सुन्दर समन्वय किया है। बुंदेलखंड में ईसुरी की फागें वहाँ की संस्कृति के नियामक तत्व हैं। खासकर लोक–संस्कृति के। ईसुरी के फागों की बुंदेलखंड में क्या अहमियत है, इसका पता वहाँ प्रचलित इस लोकोक्ति से चलता है, जिसे मैत्रेयी ने उपन्यास के शुरू होने से पहले कहा है–

'रामायण तुलसी कही सूरदास ज्यों राग,
ऐसे ही कलिकाल में कही ईसुरी फाग'

इसका जीता जागता प्रमाण बुंदेलखंड जाने पर स्वयं मिल जाएगा, जहाँ की हवा में ईसुरी की फागें गूँजती हैं। इन्हीं फागों के बीच रजऊ नाम भी आपको सुनने के लिए मिलेगा, जैसा कि ईसुरी की फागों में दिखता है।

मैत्रेयी का लेखन आज की लेखिकाओं से अलग है। जहाँ आज अधिकांश लेखिकाएँ शहरी मध्यवर्ग का लेखन कर रही हैं, वहीं मैत्रेयी गाँव की पृष्ठभूमि पर लिख रही है। मैत्रेयी के लेखन के बारे में राजेंद्र यादव कहते हैं " 'स्त्री का गाँव' तो फैलाव से तुम्हारी ही रचनाओं में पहली बार आ रहा था। यह भारतीय राजनीति के उसी परिदृश्य का परिणाम था, जहाँ लोकतंत्र में अनेक माध्यमों से, संसद तक सड़क तक गाँव दिखाई देने लगा था। यह खूबसूरत ड्राइंग–रूमों में स्त्री लेखन को बाहर निकाल लाने का ही लेखन नहीं था, बल्कि वह लेखन भी था, जिसे शिष्ट सुरुचिपूर्ण और कलात्मक दुनिया ने 'गँवारू' कहकर अपनी बिरादरी से बाहर कर रखा था। यह 'बाहर होना' सिर्फ पात्रों, कथाक्षेत्रों या जीवन स्थितियों तक सीमित न रहकर बोली–बाली, रहन–सहन से लेकर संस्कारों, नैतिक मान्यताओं और भाषिक संरचनाओं में भी प्रतिबिम्बित हो रहा है।"[18]

मैत्रेयी ने पुरानी लोककथा को एक नया रूप दिया है। पुराने और नए का यह सामंजस्य मैत्रेयी के औपन्यासिक शिल्प को एक नया रूप देता है। फागों का विस्तार कुछ इस तरह से किया गया है कि उसमें मानवीय संवेदना उभरकर आई है। सामंती समाज की समस्याओं को आज के समाज की समस्याओं से जोड़कर दिखाना मैत्रेयी के उपन्यास को नया रूप प्रदान करता है। जैसे फिल्म 'रंग दे बसंती' में इतिहास की घटनाओं को वर्तमान की घटनाओं के साथ लेकर फिल्म की पटकथा तैयार की गई थी। उस पर रील दर रील जिस हिसाब से घटनाओं को, सिक्वेंस में पिरोया गया है वह लाजवाब है। धड़ाधड़ घर में घुसते असलम का अशफाक बन जाना, पांडेय द्वारा अशफाक को कोसते–कोसते बिस्मिल एवं अशफाक के बीच का वह संवाद आना, जिसमें बिस्मिल अशफाक को अफगानिस्तान जाने के लिए कहते हैं और अशफाक का यह कहना कि 'क्या यह मेरा मुल्क नहीं', डी.जे. का कहना कि 'हमें कुछ करना होगा' और तुरंत चन्द्रशेखर का पर्दे पर उभरना, इन सभी दृश्यों को ऐसे पिरोया गया है कि

लगता है कि यही सर्वोत्तम क्रम है। जिस तरह से गुलाम देश में भारतीयों को सताया जा रहा था, वह आज भी अपने उसी रूप में बरकरार है। इसमें अंग्रेजी सरकार और वर्तमान सरकार के कुकृत्यों का खुलासा है। मैत्रेयी ने भी इस उपन्यास में सरस्वती देवी, करिश्मा बेड़िनी, अनवरी बेगम, शालिगराम कटारे द्वारा ईसुरी और रजऊ की कथा का क्रम कुछ इस तरह से पिरोया है कि कथा में एकरसता बनी रहती है। और यही कथा का सर्वोत्तम क्रम लगता है। हमारी नवीन संवेदना, चेतना के साथ पुरानी को जोड़कर ढर्रा ही बदल दिया है।

मैत्रेयी जिस तरह से कथा की सृष्टि करती हैं उसमें जीवन के हर रंग समा गए हैं। प्रेम, संवेदना, समाज, समाज के विचार, आपसी लड़ाई–झगड़े सभी कुछ इस कथा में मौजूद हैं। मैत्रेयी लोक के रीति–रिवाज, रहन–सहन से होते हुए कथा को राष्ट्रीय ढाँचा से जोड़ देती हैं।

मैत्रेयी के लेखन में जहाँ गाँव–कस्बों का परिवेश, वहाँ की खेतिहर संस्कृति के बनते–बिगड़ते रूप, संपत्तियों को लेकर की जाने वाली लड़ाई, धोखा, छल–कपट तो है ही, साथ ही स्त्री–पुरुष संबंध, अकुंठित सेक्स और स्त्री के उभरते व्यक्तित्व की तेजस्विता भी है। सबसे खास बात है कि मैत्रेयी ने इन सबके बीच से नारी के अस्तित्व और अस्मिता के सवाल को उठाया है। स्त्री–पुरुष के बीच भावनात्मक, संवेदनात्मक रिश्ते के साथ ही प्रेम में स्वार्थ नहीं, बल्कि दूसरों के प्रति कर्त्तव्य की भावना भी समाहित दिखाई देती है।

मध्यवर्गीय ढंग से रहने के बावजूद भी मैत्रेयी के अंदर झाँसी अंचल के गाँव, वहाँ की दुनिया, रहन–सहन जिंदा है। इन्हीं को केंद्र बनाकर मैत्रेयी ने कहानियों, उपन्यासों की रचना की है। सबसे महत्वपूर्ण है कि उनकी रचना में 'स्त्री का गाँव' बहुत विस्तार से आया है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. 'कही ईसुरी फाग'– मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ–277
2. वही, पृष्ठ–278
3. वही, पृष्ठ–209
4. वही, पृष्ठ–233
5. वही, पृष्ठ–306–07
6. वही, पृष्ठ–261
7. वही, पृष्ठ–288
8. वही, पृष्ठ–258
9. वही, पृष्ठ–294
10. वही, पृष्ठ– 197
11. वही, पृष्ठ– 277
12. वही, पृष्ठ–113
13. वही, पृष्ठ–114
14. वही, पृष्ठ–115
15. वही, पृष्ठ– 225
16. वही, पृष्ठ–34
17. वही, पृष्ठ–71
18. 'हंस' जुलाई–2006, पृष्ठ–8

उपसंहार

कुछ कही : कुछ अनकही

मैं एक औरत हूँ और मेरा जन्म, मुझे जन्म देने वाली माँ के चेहरे पर खुशी या गर्व के बजाय निराशा और भय भर देता है। यह विडम्बना नहीं तो क्या है कि जो माँ प्रसव की असहनीय पीड़ा के बाद एक नए जीवन का सृजन करती है, उस सृजन के प्रति उसके परिवार की बेरुखी, उस माँ के अंदर अपराधबोध भर देती है। मेरी माँ मुझे जन्म देकर अपने को अपराधी महसूस करती हैं। वह मुझे चाहकर भी, चाह नहीं पाती और जाने–अनजाने मैं उस पापबोध की बलि बेदी पर चढ़ने लगती हूं जो मैंने किया ही नहीं और न ही जिसे मेरी माँ ने किया है। यह मेरी नहीं, बल्कि मुझ जैसी उन सभी स्त्रियों की पीड़ा है, जो इस समाज में अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर हैं।

हमारा यह समाज आज भी औरतों के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदल नहीं पाया है। आज भी लोग, चाहे वे कितने ही उच्च पदों पर आसीन क्यों न हों, औरतों को घर की चारदीवारी में ही रखना पसंद करते हैं। सती के नाम पर पति के साथ जिंदा जलकर मरने वाली औरतों की पूजा करने वालों की आज भी हमारे समाज में कमी नहीं है।

आखिर आज भी यह भेदभाव क्यों मौजूद है। जन्म से लेकर जीवन के तमाम चरणों में सिर्फ लिंग के आधार पर स्त्रियों के साथ जो भेदभाव बरता जा रहा है, क्या समानता की हमारी तमाम घोषणाओं को कोरी घोषित नहीं कर रही? हमारा परिवार व समाज, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में औरतों को जिस प्रकार से हाशिए पर डाले हुए है, वही औरतों की इस शोचनीय दशा के लिए जिम्मेदार है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि औरतों पर होने वाले जुल्म और हिंसा की वास्तविक जड़ें, शोषण पर टिके हमारे इस पितृसत्तात्मक समाज के अंदर निहित हैं। मैत्रेयी इस बात को भलीभाँति जानती हैं, क्योंकि उन्होंने अपने जीवनानुभव से यह जाना है कि यह समाज, जिसमें उसे शारीरिक और मानसिक यातना को भोगना पड़ा है, उन सामाजिक विचारों– जिसके तहत औरतों के प्रति भेदभाव भरे व्यवहार को स्वभाविक मान लिया जाता है– की जड़ें इस समाज में ही निहित हैं। ध्यान दें, यह सामाजिक भेदभाव ही औरतों को अंदर से कमजोर, डरपोक और असहाय बनाता है। यही कारण है कि वह छोटे–छोटे जुल्म का भी विरोध नहीं कर पाती और आसानी से

हर जुल्म का शिकार होती चली जाती है। 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी ऐसे ही परिवार एवं समाज के शोषण का शिकार होती है। कहने का तात्पर्य है कि इस शोषणकारी समाज में औरत की चर्चा 'सेकेंड सेक्स' या 'अन्या' के रूप में की जाती है। उसे मनुष्य रूप में प्राप्त होने वाली मर्यादा तथा सम्मान से वंचित रखा जाता है।

लेकिन बात केवल औरतों पर होने वाले तमाम जुल्म, ज्यादतियों, भ्रूणहत्या, बलात्कार, दहेज हत्या तक के अपराधों को रोकने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि हमारे सामने तो औरतों की समानता का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि तभी औरत इस समाज में एक मनुष्य रूप में आत्मसम्मान के साथ जी सकेगी। इसीलिए मैत्रेयी औरत को उस सामंती, पूँजीवादी व्यवस्था के मूल्यबोध से मुक्त करना चाहती हैं, जो उसे मात्र देवी, दासी या उपभोग की वस्तु समझती है और जो औरत के स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं करती। मैत्रेयी पुष्पा की यही कोशिश रही है कि वह स्त्री को वस्तु से व्यक्ति रूप में पहचान दिला सकें। औरतों पर हो रहे तमाम जुल्मों–सितम को देखते हुए मैत्रेयी उसे समाज में पुरुषों के बराबर अधिकार दिलाने को तत्पर हैं।

इसीलिए आज स्त्री की मुक्ति का प्रसंग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। असल में यह मुक्ति सबसे पहले परिवार में स्त्री–पुरुष संबंधों के स्तर से उठती हुई समाज और फिर राज्य तक पहुँचती है, जहाँ पितृसत्ता हावी है। क्योंकि परिवार के स्वरूप को बदले बिना समाज और राज्य को नहीं बदला जा सकता। परिवार आज भी पुराने ढर्रे पर ही चलता है। उसमें पुरुष का ही वर्चस्व विद्यमान है। सच कहें तो इनके कारण ही मानवाधिकारों और संविधान द्वारा दिए गए नागरिक अधिकारों का हनन होता है।

भारतीय संविधान ने स्त्री और पुरुष दोनों को इस देश का समान नागरिक माना है और स्त्रियों को पुरुषों के समान ही मताधिकार भी दिया है। लेकिन आज भी परिवार और समाज में स्त्री पर पुरुष का नियंत्रण, दमन और उत्पीड़न कायम है– खुले रूप में और छद्म रूप में भी। इसीलिए स्त्रीवादियों ने उन्हें यह अहसास कराया है कि जब तक समाज में पितृसत्ता और औपनिवेशिक शासन का अस्तित्व कायम रहेगा, पूँजीवाद की जगह समाजवाद आ जाएगा, तब भी स्त्रियों की मुक्ति नहीं होगी। मैत्रेयी स्त्रियों की मुक्ति के लिए इस पितृसत्तात्मक समाज की सभी रूढ़ परम्पराओं और मान्यताओं को ध्वस्त करती चलती हैं और स्त्रियों को अपनी इच्छा से जीवन जीने की छूट देती हैं।

मैत्रेयी की रचनाओं द्वारा जो बात सामने आयी है, वह यह कि स्त्रियाँ इस पितृसत्तात्मक समाज की व्यवस्था में केवल शोषित, दमित, उत्पीड़ित ही नहीं होती, बल्कि इस शोषण के खिलाफ विद्रोह करने की हिम्मत भी रखती हैं। मैत्रेयी यह अच्छी तरह जानती हैं कि जब तक इस पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था की शोषणकारी प्रक्रिया चलती रहेगी, तब तक स्त्री मुक्ति का सपना, सपना ही रह जाएगा। इसीलिए मैत्रेयी अपनी स्त्री पात्रों को घुट–घुटकर सबकुछ चुपचाप सहन करते हुए नहीं दिखाकर, इस व्यवस्था से संघर्ष और विद्रोह करते दिखाती हैं। वे विधवा विवाह, पुनर्विवाह, यौन चुनाव, प्रेम की छूट, बलात्कार से मुक्ति की माँग करती हैं।

नारी की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी समस्याओं पर मैत्रेयी ने विचार किया है। बावजूद इसके सामाजिक पक्ष के संबंध में मैत्रेयी ने दहेज जैसी कुप्रथा पर अपने किसी भी उपन्यास में ठहरकर, तो क्या नाममात्र भी विचार नहीं किया है। इसके साथ ही ग्रामीण जीवन में रची–बसी स्त्रियों की शिक्षा से संबंधित किसी भी प्रकार के विचारों को महत्व नहीं दिया है, जबकि आज अपनी बात कहने के लिए स्त्रियों को कलम का सहारा लेना पड़ रहा है। ऐसे में स्त्रियों को शिक्षित न करके मैत्रेयी उनको उनके कई अधिकारों से वंचित रख रही हैं। अशिक्षित होने के कारण जो शासन की ओर से दी जा रही सुविधाएं हैं उससे स्त्रियाँ वंचित ही रह जाती हैं या पूर्णरूपेण लाभ नहीं उठा पा रही हैं। उन्हें नहीं मालूम कि जीवन की सुरक्षा, अत्याचार, दहेज हत्या, सती प्रथा तथा बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों के विरुद्ध कड़ी कानूनी व्यवस्था भी है। इसीलिए 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी सती प्रथा के खिलाफ कोई कानूनी कार्रवाई नहीं कर पाती है और न ही 'इदन्नमम' की मंदा बलात्कार के बाद पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करा पाती है। शायद यही कारण है कि आज महिलाओं के साथ हो रहे अपराधों की रोकथाम नहीं हो पा रही है। दिन–प्रतिदिन बलात्कार, दहेज जैसे कुकृत्य बढ़ते ही जा रहे हैं। मैत्रेयी ने स्त्रियों में जहाँ साहस, संघर्ष और विद्रोह की भावना को भरा है, वहीं अगर थोड़ी सी शिक्षा भी उन्हें देती तो स्त्रियाँ अपने अधिकारों सहित ज्यादा सहज होकर विद्रोह कर पातीं।

नारी के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो, उसके पास कमाने का साधन हो– नौकरी या व्यवसाय। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक स्त्री अपने अस्तित्व विकास, शिक्षा–दीक्षा आर्थिक स्वतंत्रता एवं साक्षरता के साथ–साथ अपने कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व के प्रति भी जागरूक हो।

जीवन के दो पहलू सुख और दु:ख में से मैत्रेयी ने स्त्रियों के जीवन के केवल दूसरे पहलू को ही ज्यादा महत्व दिया है। वे अपनी लगभग सभी रचनाओं में स्त्रियों के दु:ख–दर्द का ही जिक्र करती हैं। क्या स्त्री के जीवन में कभी सुख की बरसात ही नहीं होती? क्या स्त्री कभी खुश नहीं होती– चाहे वह क्षणिक ही क्यों न हो? क्या आँखों में आँसू लिए रहना ही उसकी नियति है? मैत्रेयी ने इस एक पक्ष पर विचार कर स्त्रियों के जीवन के दूसरे सुखमय पक्ष को अनदेखा कर दिया है। छोटी–छोटी खुशियाँ भी स्त्रियों के जीवन में किस तरह बहार बनकर आती है, मैत्रेयी ने इसकी कहीं भी चर्चा नहीं की है।

मैत्रेयी नारी जीवन से संबंधित बड़े–बड़े सवाल उठाकर जहाँ एक ओर इस समाज के सामने चुनौती खड़ी करती हैं, वहीं कुछ छोटे, पर महत्वपूर्ण सवालों को नजरअंदाज करके स्त्रियों के खुलते विचारों में थोड़ी परेशानी भी पैदा करती हैं।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

आधार–ग्रंथ

मैत्रेयी पुष्पा

अगनपाखी

वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2001, द्वितीय संस्करण–2003

अल्मा कबूतरी

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण,–2000, दूसरी आवृति–2001

इदन्नमम

किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–1994

कस्तूरी कुंडल बसै

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण,–2002, पहली आवृति–2003

कही ईसुरी फाग

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण,–2004

खुली खिड़कियाँ

सामयिक प्रकाशन, 3320–21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2003

चाक

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण,–1997, दूसरी आवृति–2004

चिन्हार

आर्य प्रकाशन मंडल, सरस्वती भंडार, गाँधी नगर, दिल्ली–110031, प्रथम संस्करण–1991

झूलानट

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण,–2001,

बेतवा बहती रही

किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–1993

ललमनियाँ

किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–1996

विजन
वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण –2002

सहायक–ग्रंथ

अनामिका

स्त्रीत्व का मानचित्र सारांश प्रकाशन, प्रा.लि., 142–ए पॉकेट–4, मयूर विहार, फेज–1, दिल्ली–110091

अरविन्द जैन

औरत, अस्तित्व और अस्मिता
महिला–लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन
सारांश प्रकाशन, प्रा. लि. 142,– ई, पॉकेट–4, मयूर विहार, फेज–1, दिल्ली–110091, प्रथम संस्करण, महिला दिवस 2000

औरत होने की सजा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996

बचपन से बलात्कार
शिल्पायन प्रकाशन, संस्करण, 2004

आशा रानी व्होरा

भारतीय नारी दशा और दिशा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983

उमा शुक्ला

भारतीय नारी– अस्मिता की पहचान
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1994

उर्मिला भटनागर

हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण
अर्चना प्रकाशन, 10/890, मालवीय नगर, जयपुर, संस्करण, 1991

उषा यादव–

हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–1999

कमला भसीन
निगहत सईद ख़ान

नारीवाद क्या है?
ग्रामोन्नति संस्थान, महोवा,
संक्षेपन एवं संपादन– अंशु मालवीय

जगजीत सिंह

दिवंगत बेटियाँ
फस्ट एडिशन, नई दिल्ली, 110065, प्रथम संस्करण, 2004

जगदीश्वर चतुर्वेदी
सुधा सिंह

स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा
आनन्द प्रकाशन, 176–178, रवींद्र सरणी, कोलकाता–700007, प्रथम संस्करण, 2004

स्त्रीवादी साहित्य विमर्श
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीव्यूटर्स प्रा. लि., 4697/3, 21–ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण, 2000

जर्मेन ग्रीयर

बधिया स्त्री
अनुवाद–मधु बी. जोशी
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण, 2001, दूसरा संस्करण, 2005

जॉन स्टुअर्ट मिल

स्त्रियों की पराधीनता
अनुवाद– प्रगति सक्सेना
राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2002

जी. बी. सिंह

आधी दुनिया
प्रबंध संपादक– नीता मल्ल
बी.एम.एन. प्रकाशन, लखनऊ, 226020, प्रकाशन वर्ष, 2001

तसलीमा नसरीन

चार कन्या
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण, 2004

प्रभा खेतान

उपनिवेश में स्त्री
मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण, 2003

छिन्न मस्ता
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण, 1997

बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ
भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न
वाणी प्रकाशन, 21–ए दरियागंज नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण, 2004

स्त्री : उपेक्षिता
सीमोन द बोउवार की विश्व चर्चित कृति द सेकेंड सेक्स का हिन्दी रूपांतर जीवनी, संदर्भ एवं प्रस्तुति
हिन्दी पॉकेट बुक्स, दूसरा पेपरबैक संस्करण, 1992

महादेवी वर्मा — श्रृंखला की कड़ियाँ,
लोकभारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1 द्वारा प्रकाशित, तृतीय लोकभारती संस्करण, 2001

मेरी वोल्सटन क्राफ्ट — स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन
अनुवाद–मीनाक्षी
राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2003

मृणाल पांडे — ओ ओब्बीरी...
राधाकृष्ण प्रकाशन

रमेश उपाध्याय
संज्ञा उपाध्याय — आज का स्त्री आन्दोलन
शब्द संधान प्रकाशन, बी.–1/18 ए, पश्चिम विहार, नई दिल्ली, 110063, प्रथम संस्करण, 2004

राजकिशोर — स्त्री के लिए जगह
वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण 1994, द्वितीय संस्करण 2000

स्त्री : परम्परा और आधुनिकता
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999

स्त्री–पुरुष कुछ पुनर्विचार
वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण, 2000

राजेंद्र यादव
आदमी की निगाह में औरत
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002

रोमी शर्मा
भारतीय महिलाएँ : नई दिशाएँ
प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, 110001, संस्करण 2002

सरला माहेश्वरी
नारी प्रश्न
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण जुलाई, 1998

साधना अग्रवाल
महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन
(विश्लेषण तथा आकलन)
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995

सुरेंद्र वर्मा
मुझे चाँद चाहिए
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., जी–17, जगतपुरी, दिल्ली, 110051, पहला संस्करण, 1993

क्षमा शर्मा

स्त्री का समय
मेधा बुक्स, एक्स–11, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण, 1998

स्त्रीत्ववादी विमर्श
समाज और साहित्य
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण, 2002

लेख

अनामिका

औरत, अस्तित्व और अस्मिता :
आलोचना का सखी तत्व
हंस, नवम्बर–2000

अभिषेक कश्यप

नारी चेतना की प्रासंगिकता
हंस, अगस्त– 1993

अरविन्द जैन

स्त्री की जगह और समाज
हंस, दिसम्बर–2000

गोपाल राय

नए लेखकों का संदर्भ
आजकल, मई–जून, 1995

गिरिराज किशोर

स्त्री मन की सार्थक पहचान
समकालीन भारतीय साहित्य
अक्टूबर– दिसम्बर–1994

द्वारिका प्रसाद सक्सेना	यह मेरे लिए नहीं आजकल, सितम्बर– 1995
प्रभा खेतान	स्त्री विमर्श के अंतर्विरोध हंस, अक्टूबर–1996 दो उपन्यास और नारी संघर्ष हंस, जून–1994
प्रेम कुमार मणि	यह जो कुछ है मेरा नहीं हंस, अगस्त– 1994
राजेंद्र प्रसाद पांडे	मुक्ति की आकांक्षा आजकल, मार्च–1996
वेद प्रकाश अभिताभ	इदन्नमम औरतों और वंचितों की संघर्ष गाथा हंस, जुलाई–सितम्बर, 1994